स्वामी दयानन्द

स्वामी दयानन्द

फरहाना ताज
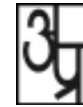
अनन्य प्रकाशन

प्रकाशक : अनन्य प्रकाशन
ई-17, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा
दिल्ली-110032

प्रथम संस्करण : 2014

आईएसबीएन : 978-93-9875964

मूल्य : ₹ 200/-

शब्द-संयोजन : कम्प्यूटेक सिस्टम, दिल्ली-110032

मुद्रक : कॉम्पैक्ट प्रिंटर्स, दिल्ली-110032

अनुक्रम

जन्म और बचपन

हमारा देश कभी सोने की चिड़िया कहलाता था, लेकिन सोने की चिड़िया कहलाना ही इसे भारी पड़ गया और विदेशी आक्रांताओं के निशाने पर आने से सदियों तक इसके सोने के पर कतरने के लिए इस पर बाहरी आक्रमण होते रहे; इसने अपना निरंतर बचाव किया, लेकिन कभी शक, कभी हूण, कभी यवन और कभी आंग्ल इस प्रकार सारी दुनिया के लुटेरों की दृष्टि में हमारा देश खटकता ही रहा तो कालांतर में इसे पराधीनता का मुख भी देखना पड़ा, क्योंकि जब सारी दुनिया ही इसकी समृद्धि को लूटना चाहती थी, तो यह अपना बचाव आखिर कब तक करता। लेकिन प्रकृति परिवर्तनशील है और कहते हैं कि सारे दिन एक से नहीं रहते, यही कारण है कि ऐसे आसार बनने लगे थे कि भारत एक दिन पुनः समृद्धि को प्राप्त होगा। दरअसल जब-जब धर्म की हानि होती है, तब-तब धर्म की रक्षा के लिए कोई न कोई पुण्य आत्मा अवश्य ही जन्म लेती है या इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि ईश्वर की कृपा से कोई आत्मा इस दुनिया में आती है और लोगों को सम्मान के साथ, धर्म के साथ और नैतिकता के साथ जीना सीखाती है। या फिर ऐसा भी कह सकते हैं कि परिस्थितियों को देखते हुए किसी व्यक्ति में प्रेरणा आ जाती है कि अपने धर्म को बचाना चाहिए या फिर बचपन में ही बाल बुद्धि में बाह्य आडंबर और अंधविश्वासों को देखकर तर्क-वितर्क में मन उलझ

जाता है और यही उलझन धर्म के उत्थान की सुलझन बन जाती है। ऐसा ही कुछ एक बालक मूलशंकर के साथ था। आज हम आपको उसी बालक मूलशंकर के प्रेरक जीवन से अवगत कराएंगे। यह बालक मूलशंकर कालांतर में सारी दुनिया में महर्षि दयानंद सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनका जन्म गुजरात प्रान्त के मोरबी के टंकारा नामक ग्राम में सम्वत् 1881 फाल्गुन की दशमी तिथि, दिन शनिवार अर्थात् 12 फरवरी सन् 1825 को श्री करसनजी त्रिवेदी के घर माता यशोदा बाई की कोख से हुआ। श्री करसनजी त्रिवेदी एक प्रतिष्ठित औदीच्य ब्राह्मण थे। करसनजी त्रिवेदी बड़े जमींदार थे। सरकार की ओर से लगान की वसूली करते थे। राज्य में तहसीलदार के पद पर प्रतिष्ठित होने के कारण आसपास के क्षेत्र में काफ़ी प्रभाव था। पुत्र-जन्म पर परिवार में खुशियां मनाई गईं। मिठाइयां बांटी गईं। ग़रीबों को दान दिया गया। मूलशंकर का पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार से हुआ। परिवार में पूर्ण रूप से धार्मिक वातावरण था। तीन वर्ष की अवस्था में बालक मूलशंकर गायत्री मन्त्र का शुद्ध उच्चारण करने लगे थे। पांचवें वर्ष में प्रवेश करते ही विधिवत् शिक्षा प्रारम्भ की गई। देवनागरी लिपि सिखाने के लिए पंडित की नियुक्ति की गई। नित्य प्रातः पंडित जी मूलशंकर को पढ़ाने आया करते थे। मूलशंकर ने पहले कुछ संस्कृत पढ़ी, फिर यजुर्वेद कण्ठस्थ किया।

पिताजी शिव के उपासक थे और शिवपुराण की कथा सुना करते थे। वे मूलजी को भी साथ ले जाते और शिव-पूजन की महिमा बताया करते।

उस दिन उन्होंने पहले तो महाशिवरात्रि के बारे में बताया, ''बेटा महाशिवरात्रि हिन्दुओं का एक प्रमुख त्योहार है। यह भगवान शिव का प्रमुख पर्व है। फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को शिवरात्रि पर्व मनाया जाता है।''

''मगर क्यों?'' बालक पूछ बैठा था।

''माना जाता है कि सृष्टि के प्रारंभ में इसी दिन मध्यरात्रि भगवान् शंकर का ब्रह्मा से रुद्र के रूप में अवतरण हुआ था। प्रलय की वेला

में इसी दिन प्रदोष के समय भगवान शिव तांडव करते हुए ब्रह्मांड को तीसरे नेत्र की ज्वाला से समाप्त कर देते हैं। इसीलिए इसे महाशिवरात्रि अथवा कालरात्रि कहा गया। तीनों भुवनों की अपार सुंदरी तथा शीलवती गौरां को अर्धांगिनी बनाने वाले शिव प्रेतों व पिशाचों से घिरे रहते हैं। उनका रूप बड़ा अजीब है। शरीर पर मसानों की भस्म, गले में सर्पों का हार, कंठ में विष, जटाओं में जगत-तारिणी पावन गंगा तथा माथे में प्रलयंकर ज्वाला है। बैल को वाहन के रूप में स्वीकार करने वाले शिव अमंगल रूप होने पर भी भक्तों का मंगल करते हैं और श्री-संपत्ति प्रदान करते हैं।''

''लेकिन हम महाशिवरात्रि क्यों मनाते हैं?'' जब यह प्रश्न किया गया तो पिताश्री ने एक कथा सुनानी शुरू कर दी थी :

एक बार पार्वती जी ने भगवान शिवशंकर से पूछा, 'ऐसा कौन-सा श्रेष्ठ तथा सरल व्रत-पूजन है, जिससे मृत्युलोक के प्राणी आपकी कृपा सहज ही प्राप्त कर लेते हैं?' उत्तर में शिवजी ने पार्वती को 'शिवरात्रि' के व्रत का विधान बताकर यह कथा सुनाई : एक गांव में एक शिकारी रहता था। पशुओं की हत्या करके वह अपने कुटुम्ब को पालता था। वह एक साहूकार का ऋणी था, लेकिन उसका ऋण समय पर न चुका सका। क्रोधित साहूकार ने शिकारी को शिवमठ में बंदी बना लिया। संयोग से उस दिन शिवरात्रि थी।

शिकारी ध्यानमग्न होकर शिव-संबंधी धार्मिक बातें सुनता रहा। चतुर्दशी को उसने शिवरात्रि व्रत की कथा भी सुनी। संध्या होते ही साहूकार ने उसे अपने पास बुलाया और ऋण चुकाने के विषय में बात की। शिकारी अगले दिन सारा ऋण लौटा देने का वचन देकर बंधन से छूट गया। अपनी दिनचर्या की भांति वह जंगल में शिकार के लिए निकला। लेकिन दिनभर बंदी गृह में रहने के कारण भूख-प्यास से व्याकुल था। शिकार करने के लिए वह एक तालाब के किनारे बेल-वृक्ष पर पड़ाव बनाने लगा। बेल वृक्ष के नीचे शिवलिंग था, जो विल्वपत्रों से ढका हुआ था। शिकारी को

उसका पता न चला।

पड़ाव बनाते समय उसने जो टहनियाँ तोड़ीं, वे संयोग से शिवलिंग पर गिरीं। इस प्रकार दिनभर भूखे-प्यासे शिकारी का व्रत भी हो गया और शिवलिंग पर बेलपत्र भी चढ़ गए। एक पहर रात्रि बीत जाने पर एक गर्भिणी मृगी तालाब पर पानी पीने पहुंची। शिकारी ने धनुष पर तीर चढ़ाकर ज्यों ही प्रत्यंचा खींची, मृगी बोली, 'मैं गर्भिणी हूं। शीघ्र ही प्रसव करूंगी। तुम एक साथ दो जीवों की हत्या करोगे, जो ठीक नहीं है। मैं बच्चे को जन्म देकर शीघ्र ही तुम्हारे समक्ष प्रस्तुत हो जाऊंगी, तब मार लेना।' शिकारी ने प्रत्यंचा ढीली कर दी और मृगी जंगली झाड़ियों में लुप्त हो गई। कुछ ही देर बाद एक और मृगी उधर से निकली। शिकारी की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। समीप आने पर उसने धनुष पर बाण चढ़ाया। तब उसे देख मृगी ने विनम्रतापूर्वक निवेदन किया, 'हे पारधी! मैं थोड़ी देर पहले ऋतु से निवृत्त हुई हूं। कामातुर विरहिणी हूं। अपने प्रिय की खोज में भटक रही हूं। मैं अपने पति से मिलकर शीघ्र ही तुम्हारे पास आ जाऊंगी।' शिकारी ने उसे भी जाने दिया। दो बार शिकार को खोकर उसका माथा ठनका। वह चिंता में पड़ गया। रात्रि का आखिरी पहर बीत रहा था। तभी एक अन्य मृगी अपने बच्चों के साथ उधर से निकली। शिकारी के लिए यह स्वर्णिम अवसर था। उसने धनुष पर तीर चढ़ाने में देर नहीं लगाई। वह तीर छोड़ने ही वाला था कि मृगी बोली, 'हे पारधी! मैं इन बच्चों को इनके पिता के हवाले करके लौट आऊंगी। इस समय मुझे मत मारो।'

शिकारी हंसा और बोला, सामने आए शिकार को छोड़ दूं, मैं ऐसा मूर्ख नहीं। इससे पहले मैं दो बार अपना शिकार खो चुका हूं। मेरे बच्चे भूख-प्यास से तड़फ रहे होंगे। उत्तर में मृगी ने फिर कहा, 'जैसे तुम्हें अपने बच्चों की ममता सता रही है, ठीक वैसे ही मुझे भी। इसलिए सिर्फ बच्चों के नाम पर मैं थोड़ी देर के लिए जीवनदान मांग रही हूं। हे पारधी! मेरा विश्वास कर, मैं इन्हें इनके पिता के पास छोड़कर तुरंत लौटने की

प्रतिज्ञा करती हूं।'

मृगी का दीन स्वर सुनकर शिकारी को उस पर दया आ गई। उसने उस मृगी को भी जाने दिया। शिकार के अभाव में बेल-वृक्ष पर बैठा शिकारी बेलपत्र तोड़-तोड़कर नीचे फेंकता जा रहा था। पौ फटने को हुई तो एक हृष्ट-पुष्ट मृग उसी रास्ते पर आया। शिकारी ने सोच लिया कि इसका शिकार वह अवश्य करेगा। शिकारी की तनी प्रत्यंचा देखकर मृग विनीत स्वर में बोला, 'हे पारधी भाई! यदि तुमने मुझसे पूर्व आने वाली तीन मृगियों तथा छोटे-छोटे बच्चों को मार डाला है, तो मुझे भी मारने में विलंब न करो, ताकि मुझे उनके वियोग में एक क्षण भी दुःख न सहना पड़े। मैं उन मृगियों का पति हूं। यदि तुमने उन्हें जीवनदान दिया है तो मुझे भी कुछ क्षण का जीवन देने की कृपा करो। मैं उनसे मिलकर तुम्हारे समक्ष उपस्थित हो जाऊंगा।'

मृग की बात सुनते ही शिकारी के सामने पूरी रात का घटनाचक्र घूम गया, उसने सारी कथा मृग को सुना दी। तब मृग ने कहा, 'मेरी तीनों पत्नियां जिस प्रकार प्रतिज्ञाबद्ध होकर गई हैं, मेरी मृत्यु से अपने धर्म का पालन नहीं कर पाएंगी। अतः जैसे तुमने उन्हें विश्वासपात्र मानकर छोड़ा है, वैसे ही मुझे भी जाने दो। मैं उन सबके साथ तुम्हारे सामने शीघ्र ही उपस्थित होता हूं।' उपवास, रात्रि-जागरण तथा शिवलिंग पर बेलपत्र चढ़ने से शिकारी का हिंसक हृदय निर्मल हो गया था। उसमें भगवद् शक्ति का वास हो गया था। धनुष तथा बाण उसके हाथ से सहज ही छूट गया। भगवान् शिव की अनुकंपा से उसका हिंसक हृदय कारुणिक भावों से भर गया। वह अपने अतीत के कर्मों को याद करके पश्चाताप की ज्वाला में जलने लगा।

थोड़ी ही देर बाद वह मृग सपरिवार शिकारी के समक्ष उपस्थित हो गया, ताकि वह उनका शिकार कर सके, किंतु जंगली पशुओं की ऐसी सत्यता, सात्विकता एवं सामूहिक प्रेमभावना देखकर शिकारी को बड़ी ग्लानि हुई। उसके नेत्रों से आंसुओं की झड़ी लग गई। उस मृग परिवार को न

मारकर शिकारी ने अपने कठोर हृदय को जीव हिंसा से हटा, सदा के लिए कोमल एवं दयालु बना लिया। देवलोक से समस्त देव समाज भी इस घटना को देख रहे थे। घटना की परिणति होते ही देवी-देवताओं ने पुष्प-वर्षा की। तब शिकारी तथा मृग परिवार मोक्ष को प्राप्त हुए।'

''लेकिन जंगली पशु क्या मनुष्य की तरह बोलते हैं?'' मूलशंकर ने कथा सुनकर प्रश्न किया था।

''आज के युग में नहीं, बहुत पहले सतयुग में बोलते थे।''

''सतयुग क्या होता है?''

''वह युग जिसमें सब सत्यवादी, सात्विक और सज्जन हों।''

''फिर वह शिकारी उस युग में पशु हिंसा क्यों करता था?''

पिता का माथा ठनका, ''सारी बातें तेरी समझ में न आएंगी, भगवान भोले शंकर पर आस्था रख, ज्यादा सवाल पूछेगा तो जलाकर भस्म कर देंगे।'' बालक शांत हो गया और महाशिवरात्रि का व्रत रखने की ठान ही ली थी। मूलजी की शिव में बड़ी श्रद्धा हो गई। शिव उनके इष्टदेव थे। शिव के उपासक शिवरात्रि को पवित्र रात्रि मानते हैं। उस दिन व्रत रखते हैं। रात को जागते और दिन को निराहार रहकर शिव का पूजन करते हैं। जब मूलशंकर की आयु चौदह वर्ष की हुई, तो उसने सोचा कि अब व्रत रखना चाहिए। पिता ने प्यार से रोका कि बालक छोटा है, व्रत का कष्ट न उठा सकेगा। परन्तु मूलशंकर ने स्वयं व्रत रखना मान लिया और पिताजी उसे शिवमन्दिर में साथ ले गए।

पहला व्रत था कुछ चाह थी, श्रद्धा थी। मूलजी ने ठानी, सारी रात जागकर शिव को खुश करें। और शिवजी दर्शन दे दें तो कुछ मांग भी लें। आधी रात होते-होते सब पुजारी और उपासक सो गए। मूल के पिताजी ने भी वहीं लम्बी तान ली। अब मूल अकेला जागने लगा।

शिवलिंग पर मिठाई रखी थी, फल चढ़े थे, भीनी-भीनी सुगन्ध उठ रही थी। इतने में एक चूहा निकला। शिवलिंग के इधर-उधर फिरा, जैसे पुजारी परिक्रमा किया करता है। इधर मूलजी की आंख भी न झपकती

थी। फिर-फिराकर चूहा चौकी पर चढ़ा और शिवजी से अठखेलियां करने लगा।

मूलशंकर यह देखकर हक्का-बक्का रह गया। क्या यही महाशिव है, जो दैत्यों को मारता है? जो महादेव भयंकर राक्षसों को मार भगाता है, उससे आज एक चूहा क्यों हटाया नहीं जाता? क्या कैलाश पर रहने वाला यही महादेव है, जो चूहों का मल मूत्र सह रहा है? या इस चौकी को ही कैलाश पर्वत कहते हैं, जो अपनी रक्षा करने में भी समर्थ नहीं? मैं इसके लिए क्यों जागूं? व्रत से क्या लाभ, फिर भूखा क्यों मरूं?

मूलशंकर के मन में इस प्रकार की शंकाओं का दरिया-सा बह गया। उसने पिताजी को जगाया और उनसे प्रश्न किए।

''पिताजी क्या यही महादेव हैं?''

''क्या हुआ'' आंख मलता हुआ करसन जी उठा, ''क्यों आसमान सिर पर उठा रखा है।''

''शिवलिंग पर चूहे कलाबाजी...।''

''मीठा जो चढ़ा है, देखकर चूहे नहीं आएंगे, तो क्या...।''

''महादेव तो सर्व शक्तिसम्पन्न हैं ना।''

''हैं, तो फिर?''

''इन चूहों को क्यों नहीं भगाते?''

''मूर्ख बालक, मूर्ति तो पत्थर की है, फिर यह चूहों को कैसे भगाएगी?''

''पिताजी! फिर ऐसे पत्थर को पूजने से क्या लाभ जो एक चूहे को भी अपने ऊपर से न हटा सके।'' फिर उसने कहा, ''मैं घर जाकर उपवास तोड़ता हूं।''

पिता पुत्र के तर्कों से निरुत्तर होकर उसका मुख ताकता रह गया और मूल ने घर जाकर उपवास तोड़ दिया। भर पेट खाकर आराम से सोने के लिए लेट गया, लेकिन उसकी आंखों में आज नींद कहां थी? मन में तो तरह-तरह के प्रश्न उठ रहे थे। भगवान कौन है? शिव नहीं

तो क्या श्रीकृष्ण हैं? पर उसकी भी तो मूर्तियां पत्थरों की हैं! यदि पत्थर में भगवान नहीं तो फिर उसका स्वरूप कैसा है? ईश्वर का रहस्य कैसा है? कहां रहता है? क्या करता है वह? इसी तरह सोचते-सोचते आखिरकार उसको नींद आ ही गयी और वह गहरी नींद में सो गया।

बच्चे के हृदय में उत्पन्न हुई नैतिक क्रान्ति के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। क्षण भर में ही उसकी श्रद्धा मूर्तिपूजा पर से हट गई, और वह आजीवन तक रही। उसने पौराणिक कर्मकाण्ड का परित्याग कर दिया। यह घटना पिता और पुत्र में भयंकर संघर्ष उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त थी। दोनों में संघर्ष होकर रहा। दोनों ही स्वतन्त्र प्रकृति के व्यक्ति थे, जिसके कारण पारस्परिक समझौते के द्वार बन्द हो गये। पिता पुत्र को नास्तिक समझने लगा, तो मां किसी बुरी आत्मा या भूत प्रेत का साया उसके ऊपर आया जान झाड़-फूंक वालों की शरण में चली। कोई भी ओझा, पंडित या विद्वान बालक के अंदर फिर मूर्ति-पूजा के प्रति श्रद्धा उत्पन्न न कर सका।

वैराग्य के पथ पर

भारत की संस्कृति वर्ण-व्यवस्था पर आधारित है। यहां गुणों के आधार पर वितरण होता है। जो जैसा कर्म करता है, वैसा ही वर्ण उसे मिल जाता है। इसी प्रकार यहां आश्रम व्यवस्था भी सृष्टि के आदिकाल से चली आ रही है। 25 साल तक ब्रह्मचारी, फिर 25 से 50 तक गृहस्थी और 50 से 75 तक वानप्रस्थ और उसके बाद संन्यास आश्रम। ये चारों आश्रम जीवन के आधार हुआ करते थे। लेकिन संन्यास आश्रम के बारे में कहा जाता है कि यह तभी सार्थक है, जब वैराग्य उत्पन्न हो जाए और यदि वैराग्य बचपन या जवानी में भी उत्पन्न हो जाए तो व्यक्ति तभी संन्यासी बन सकता है। वैराग्य होने पर संन्यासी बनने के लिए 75 साल की उम्र होना आवश्यक नहीं है। वैराग्य क्यों, कब और कैसे या किन कारणों से पैदा हो जाए कहा नहीं जा सकता। वैराग्य का मतलब यही है कि व्यक्ति मोह-माया के चक्कर में नहीं पड़ना चाहता वह तो अपने उत्थान की सोचता है और मोक्ष का परम पद पाना चाहता है। इसी प्रकार के वैराग्य में न जाने कितने लोगों ने भगवा चोला धारण किया, लेकिन स्वामी दयानंद एक अकेले ऐसे महापुरुष थे, जो वैराग्य होने पर अपना ही कल्याण नहीं चाहते थे, वरन सारी दुनिया का कल्याण चाहते थे। उन्हें नहीं चाहिए था ऐसा मोक्ष जिसके वे अकेले अधिकारी बनें, वे तो सबका कल्याण चाहते थे। लेकिन प्रश्न यह है कि उन्हें वैराग्य हुआ

कैसे? क्या कारण थे वे? तो हम पहले इसी पर चर्चा करेंगे। शिवरात्रि वाली बात तो आपको बता ही दी अब थोड़ा आगे बढ़ चलते हैं। हैं ना। कुछ समय पश्चात् मूलशंकर के घर में दो मौतें हुईं। इन दो मौतों ने उनमें मृत्यु से बचने के लिए अमृत की तलाश के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न कर दी। उसकी छोटी बहन का विशूचिका से प्राणान्त हो गया। बहन की मृत्यु के समय वह उसके सम्मुख उपस्थित था। कदाचित् उसने मृत्यु के समय बहन के कष्ट को देखा होगा। वह उसके तड़फड़ाने को देखकर स्वयं दुःखी हुआ होगा।

बाद में अपने स्वरचित जीवन-चरित्र में स्वामी दयानंद जी ने लिखा है, ''उस भगिनी के वियोग का शोक मेरे जीवन का प्रथम शोक था। उस शोक से हृदय में बड़ा आघात लगा। जब परिवार के लोग मेरे चारों ओर खड़े क्रंदन-विलाप कर रहे थे, मैं पत्थर की मूर्ति के समान अविचलित चिंता में डूबा हुआ था। मनुष्य की क्षण-भंगुरता की बात सोचकर अपने मन में कह रहा था कि जब पृथ्वी पर सबको ही इस प्रकार मरना है, तो मैं भी एक दिन मरूंगा। कोई ऐसा स्थान भी है या नहीं, जहां जाकर मृत्यु-समय की यंत्रणा से रक्षा हो सके तथा मुक्ति का उपाय मिल सके।''

बहन की मृत्यु के समय मूलशंकर के मन में यह संकल्प बना कि वह मृत्यु के बचने का उपाय ढूंढेगा। इसके कुछ दिन बाद ही उसके चाचा की भी मृत्यु हो गई। मूलशंकर का चाचा से बहुत स्नेह था। वह उसका गुरु और विश्वासपात्र था। चाचा-भतीजा अपने मन की बातें परस्पर किया करते थे। चाचा की मृत्यु पर मूलशंकर इतना रोया कि उसकी आंखें सूजकर लाल हो गयीं। जबकि बहन की मृत्यु पर एक आंसू भी न निकला था, इस कारण उस दिन उसे पत्थर हृदय भी कहा गया था।

घर में ये दो मौतें मूलशंकर के मन में इसको जीतने की अभिलाषा उत्पन्न करने वाली घटनाएं थीं।

चाचा की तेरहवीं के दिन मूलशंकर ने पंडित जी से पूछा, ''पंडित जी, क्या हर किसी को मरना पड़ता है?''

''हां बेटा! जो इस संसार में पैदा होता है, उसे एक-न-एक दिन मरना ही पड़ता है।''

''तो क्या मृत्यु से बचा नहीं जा सकता?''

''बचा तो जा सकता है।''

''कैसे?''

''अमर होकर।''

''अमर कैसे हुआ जाता है?''

''अमर फल या अमृत खाकर।''

''वह कहां मिलेगा?''

''वह तो अब अब धरती पर नहीं है।''

''तो क्या दूसरा उपाय या विकल्प नहीं?''

''है तो सही।''

''क्या?''

''योग साधना।''

''क्या आप मुझे योग साधना करना सिखाएंगे?''

''योग साधना हम या तुम जैसे साधारण व्यक्तियों के वश की बात नहीं।''

''तो फिर?''

''यह तो बड़े-बड़े योगियों-संत-महात्माओं के वश की बात है।''

''वे कहां मिलेंगे?''

''भयंकर जंगलों में या फिर हिमालय पर्वत की बर्फ से ढकी अज्ञात गुफाओं में।''

आगे उसने कुछ प्रश्न नहीं किया, लेकिन पिता अपने पुत्र व पुरोहित का वार्तालाप सुन रहा था। पिता को पहले से ही पता था कि पुत्र का मन घर से उचाट है। कुछ समय बाद सोचा कि विवाह कर दो, अपने आप ही फंस जाएगा। जब मूलशंकर के विवाह की चर्चा शुरू हुई तो, चारों ओर से उसके लिए रिश्ते आने लगे। हर प्रतिष्ठित परिवार चाहता

था कि उसकी बेटी का सम्बन्ध मूलशंकर जैसे गुणी युवक व धनवान परिवार से हो। अंततः एक गुणी लड़की से विवाह तय हो गया, पर जब विवाह के दिन निकट आए तो मूल ने और किसी तरह छुटकारा न देख, भाग जाने की ठानी, और वह एक दिन समय पाकर भाग खड़ा हुआ। परंतु घर से निकलते ही उसके साथ धोखा हुआ। कुछ संन्यासियों ने उसके पास का सारा धन ठग लिया।

मूलशंकर के घर से भाग जाने से सभी लोग बड़े परेशान हुए। ज्यों-ज्यों समय गुजरता गया, मूलशंकर के न आने से घर वालों की चिंता त्यों-त्यों बढ़ती गई। जब रात भर घर नहीं आये तो घर में कोलाहल मच गया। करसन जी ने बहुत खोज कराई। सब ओर सिपाही भेजे गये। अंत में एक महन्त के बताने पर मूलशंकर का पता लग गया और वे सिद्धपुर के मेले में पकड़े गये।

करसन जी पुत्र को, ब्रह्मचारियों जैसे पीत एवं लाल वस्त्रों में देख क्रोध से भर गया और उसके वस्त्रों को फाड़ते हुए उसे फटकार लगाने लगा। उसको सामान्य जन के समान वस्त्र पहना दिये गए। बालक चुपचाप यह सब सहन करता रहा। पिता ने क्रोध में उसे कहना शुरू किया, ''कुलघातक! मातृ-हन्ता! तुम बहुत बिगड़ गये हो। बताओ, क्यों भाग आये थे घर से?''

''मैं...''

''मैं...मैं क्या करता है, क्या किसी चीज की कमी थी घर में?''

''जी नहीं घर में किसी भी चीज की कमी नहीं थी।''

''फिर भागे क्यों थे?''

वे तो सोच में पड़ गए बेचारे कि अब क्या जवाब दें, इसलिए मूलशंकर ने नम्रता और क्षमा-याचना के भाव में कह दिया, 'पिताजी! भूल हो गई है। किसी ने बरगला दिया था। अब ऐसी गलती नहीं होगी।''

''सच कह रहे हो।''

''सच्ची।''

''खाओ गौमाता की कसम।''

मूलशंकर जी गाय का बहुत आदर करते थे, अब कसम कैसे खाएं, सो कह दिया, ''यह बीच में गौमाता की कसम कहां से आ गई?''

''ठीक है, तो अब घर लौट चलोगे न?''

''जी...मैं तो खुद ही आने वाला था।''

''खुद ही आनेवाला था, लेकिन देखने से तो नहीं लगता, अभी भी दृष्टि नहीं मिला पाते।''

''मैं अपनी करतूत पर शर्मिंदा हूं।''

''ठीक है।''

करसन जी ने मूलशंकर को साथ लिया और अपने खेमे में सिपाहियों के पहरे में रख दिया। रात होने पर मूलशंकर लेट गया और वह सोने का बहाना करता रहा। सिपाही रात बहुत देर तक पहरा देते रहे। पर अंततः उन्हें झपकी आ गई तो मूलशंकर चुपके से उठा और समीप रखे लोटे को उठाकर शौच करने के बहाने वहां से चल पड़ा। कुछ देर तक तो वह बैठ-बैठकर गया और जब खेमे से ओझल हुआ तो भाग खड़ा हुआ। तीन मील के अन्तर पर एक मंदिर था। मंदिर के किनारे, एक घने पेड़ की डालियां, मंदिर की गुंबद पर छायी हुई थीं। उसने देखा कि यह स्थान छिपने के लिए अच्छा है। वह पेड़ पर चढ़ गया और गुंबद का आश्रय ले पेड़ के पत्तों में छिपकर बैठ गया। यह आश्रम किसी तपस्थली से कम न था।

दिन-भर वह उस पेड़ पर छिपकर बैठा रहा। एक बार तो उसका अपना पिता और सिपाही उस मंदिर के समीप ढूंढते हुए दिखाई दिए। किसी को यह नहीं सूझा कि मूलशंकर बन्दर की भांति पेड़ की डाली के पत्तों में छिपा बैठा होगा! ऐसी तो कल्पना भी नहीं कर सकते थे।

रात होने पर मूलशंकर पेड़ से उतरा और अहमदाबाद की ओर चल पड़ा। अहमदाबाद से वह बड़ौदा पहुंचा। बड़ौदा में वह चेतन मठ के ब्रह्मचारियों और संन्यासियों की संगति में पहुंचा, ''देव! मैं भी ब्रह्मचारी

रहकर ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूं।''

''यह बहुत कठिन मार्ग है। आज के युग में ब्रह्मचारी भला कौन बनना चाहता है।''

''आप हैं और मैं बनना चाहता हूं।''

''लेकिन इस मार्ग पर चलना बहुत कठिन है बालक।''

''हर मार्ग ही कठिन होता है।''

''नारी के साये से भी दूर रहना होगा।''

''एक ब्रह्मचारी का नारी से क्या काम!''

''क्या संयम से रह पाओगे?''

''आप भी तो रह रहे हैं।''

''मेरी बात और है।''

''मेरी भी बात और है।''

''क्या बात है आपकी?''

''मैं ज्ञान पाना चाहता हूं, अमर होना चाहता हूं और लोगों का कल्याण करना चाहता हूं और इसीलिए ब्रह्मचारी रहकर अपने साधना पथ पर आगे बढ़ना चाहता हूं।''

''बहुत अच्छी बात है, आज के युग में धर्म का पतन हो गया है। धर्म के उत्थान के लिए लोगों, किशोरों और युवाओं को आगे आना होगा, लेकिन किशोर और युवा तो पाश्चात्य संस्कृति के रंगों में रंग रहे हैं, वे भला देश और धर्म की चिंता कहां करते हैं। लेकिन एक बात पूंछू बालक?''

''पूछो देव!''

''तुम यह सब क्यों करना चाहते हो? तुम हो कौन? तुम घर से भाग आए तो क्या तुम्हारे माता-पिता परेशान नहीं हो रहे होंगे।''

''बड़ा कठिन प्रश्न किया आपने, क्या कोई सरल प्रश्न नहीं पूछ सकते थे?''

''यह कठिन प्रश्न कैसे लगा?''

''इसलिए कि मैं कौन हूं, इसी की खोज में तो निकला हूं और जब

मुझे यही पता नहीं कि मैं कौन हूं तो फिर मेरे माता-पिता चिंता कर रहे हैं या नही इसकी चिंता मैं क्यों करूं।''

''बहुत अच्छे, तुम सच्चे जिज्ञासु हो, तुम जैसे साधकों की ही देश को आज सख्त जरूरत है।'' और फिर मूलशंकर ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करते हुए वहां रहकर वेदान्त की शिक्षा ग्रहण करने लगा। और वह मूलशंकर से शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी बन गया।

कुछ काल बाद उन्होंने एक संन्यासी से पूछा, ''मृत्यु पर विजय कैसे पाई जा सकती है महात्मन्।''

''यह तो बहुत कठिन प्रश्न है, बालक।''

''क्या आपको इस विषय में कुछ नहीं पता।''

''नहीं बात ऐसी भी नहीं है।''

''तो फिर कैसी है?''

''दरअसल योग ही वह रास्ता है, जिस पर चलकर मनुष्य मृत्यु पर भी विजय पा सकता है।''

''यह कहां सीखा जा सकता है। कहां मिलेंगे योग सिखाने वाले योगी और महात्मा?''

''चणोद, कर्णाली में ऐसे योगी आते रहते हैं।''

इस प्रकार की बातें जानकर मूलशंकर कुछ काल बाद मृत्यु-विजय की खोज में वह वहां से चणोद, कर्णाली की ओर चल पड़ा। वह योग से अमर बनना चाहता था।

वहां उन्होंने कई ब्रह्मचारियों, चिदानंद प्रभृति संन्यासियों और कई योग-दीक्षित साधु-महात्माओं के दर्शन किये। इससे पहले योग-दीक्षित साधुओं को उन्होंने कभी नहीं देखा था। कई दिन तक शास्त्रालाप चला, यहां हम एक झलक दिखा रहे हैं, ''तुम योगी क्यों बनना चाहते हो?''

''मैं अमर होना चाहता हूं।''

''जो पैदा हुआ है, उसे एक न एक दिन मरना ही होता है।''

''लेकिन मैंने सुना है कि योग से अमर हो सकता है आदमी।''

"तुमने गलत सुना है।"

"आपकी बात पर विश्वास कैसे करूं?"

"देखो विश्वास करो या नहीं, लेकिन पैदा हुआ है तो मरना भी पड़ेगा यही सृष्टि का नियम है।"

"फिर योग के लाभ क्या हैं?"

"योग से व्यक्ति आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है और उसी को कहते हैं कि व्यक्ति अमर हो गया।"

"अर्थात्।"

"देखो यह सही है कि योग से कुछ सिद्धियां मिल सकती है। व्यक्ति हवा में उड़ सकता है, परकाया प्रवेश की कला सीख सकता है और इच्छा अनुसार लंबी आयु तक जीवित रह सकता है, लेकिन कोई यह कहे कि योग सीखने से मृत्यु कभी नहीं आती तो यह मिथ्या है।"

"आप कैसे कह सकते हैं यह मिथ्या है?"

"अच्छा कोई ऐसा आदमी मुझे दिखा दो जो सदियों से जीवित हो? क्या किसी ऐसे आदमी को जानते हो?"

"नहीं मैं तो नहीं जानता और जब जानता ही नहीं तो फिर दिखा कैसे सकता हूं।"

"देखो यह दुनिया अरबों सालों से है, यदि योग से व्यक्ति अमर हो सकता तो आपको आज अरबों योगी मिल जाते, यूं भटकना न पड़ता। योग से मुक्ति संभव है, जन्म-मरण का ज्ञान जिसे हो जाता है, उसी को अमरता कहते हैं, ऐसा मैं मानता हूं, शास्त्र क्या मानते हैं, मुझे नहीं पता, क्योंकि शास्त्रों में आजकल बहुत मिलावट हो गई, दूध में पानी की तरह।" इस प्रकार शास्त्रार्थ के बाद एक दिन वह परमात्मा परमहंस के पास गया और उनसे शिक्षा देने की प्रार्थना की। कुछ मास में ही उन्होंने वेदान्त-सार और वेदान्त परिभाषा के ग्रन्थों को पढ़ डाला।

कर्णाली में ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य ने संन्यासधर्म की दीक्षा ली। तब मूलशंकर का नाम दयानन्द सरस्वती हो गया। संन्यास की दीक्षा देने वाले

एक दक्षिण संन्यासी स्वामी चिदाश्रम सरस्वती थे। ये योग-दीक्षित साधु थे और स्वामी दयानन्द ने इनसे बहुत-सी योग-क्रियाएं सीखीं, पर इन योग क्रियाओं से उन्हें संतुष्टि नहीं मिली, इसलिए वे सच्चे योगी की खोज में निकल पड़े। और ऐसे योगी की खोज में भ्रमण करते रहे, जो उनकी मृत्यु को जीतने का उपाय बता सके। इस खोज में वे आबूगिरि, हरिद्वार, ऋषिकेश, टिहरी, श्रीनगर, केदारनाथ, रुद्र प्रयाग, अगस्त्य आश्रम, शिवपुरी, गुप्त काशी, गौरी कुण्ड, भीम गुफा, त्रिपुणी नारायण, केदारनाथ इत्यादि स्थानों पर गये। दो वर्ष वह उत्तराखण्ड में किसी सिद्ध योगी की खोज में घूमते रहे।

एक दिन सूर्य निकलते ही दयानन्द बद्रीनाथ मन्दिर से निकले और पर्वत के नीचे-नीचे चलने लगे। अन्त में अलखनंदा के तट पर जा पहुंचे। नदी के पार बड़ामाना ग्राम दिखाई दिया। उस पार जाने की उनकी इच्छा नहीं थी। पहाड़ के नीचे-नीचे जाता हुआ मार्ग, उन्होंने पकड़ लिया। वह अलखनंदा के साथ-साथ चलते गये। रास्ते में उन्हें एक भयंकर भालू का सामना करना पड़ा। अंततः भालू को उन्होंने भगा दिया। पर्वत और मार्ग मोटे बर्फ से ढके हुए थे। अन्त में अलखनंदा के प्रसिद्ध उत्पत्ति स्थान पर वह पहुंचा। वहां पर उन्होंने देखा कि चारों ओर गगनभेदी पर्वतमाला खड़ी है। वह स्थान उनके लिए सर्वथा अपरिचित था। साथ ही चारों ओर से पर्वतों से घिरा हुआ भी।...कुछ देर तो इधर-उधर घूमते रहे। फिर नदी के दूसरी ओर जाकर मार्ग ढूंढने का विचार कर वह नदी में घुस गये। उस समय वह साधारण पतला कपड़ा पहने हुए थे। भूख और प्यास भी लग रही थी। उससे चित्त क्लान्त था। जल बर्फ के समान ठंडा था, कहीं गहरा था बर्फीले किनारों के बीच में यह दस हाथ चौड़ी नदी होगी। नदी तल पर बर्फ और पत्थर के टुकड़ों से उनके पांव क्षत-विक्षत हो रहे थे। रक्त बहने लगा और उनके पांव सुन्न हो गए थे। ऐसा अनुभव होने लगा कि एक बार जल में गिरे तो फिर उठ नहीं सकेंगे और बर्फ में जमकर प्राणान्त हो जायेगा। उनमें चलने की शक्ति नहीं थी। जीवन से निराश-सा

हो रहे थे। तब उन्हें वहां दो मनुष्य आते दिखाई दिये, वे उनकी अवस्था देख और उनके भ्रमण का कारण जानकर उसे अपने घर तक चलने के लिए कहने लगे। उन्होंने उसे वचन दिया कि वे सिद्धपुर तीर्थ तक पहुंचा देंगे। परन्तु उसमें चलने की हिम्मत नहीं थी। अतः उसने उनके साथ चलने की असमर्थता प्रकट की। इस पर वे दयानन्द को वहीं छोड़कर चल दिये।

उनके जाने के बाद दयानन्द में मरने से बचने की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई। वह उठे और पुनः नदी पार कर जिस मार्ग से आए थे, लौटने लगे। रात्रि के आठ बजे दयानन्द पुनः बद्रीनारायण के मन्दिर में आ गये। बद्रीनारायण मन्दिर के रावल जी दयानन्द के न लौटने से अति चिन्तित थे। उस घटना से उनके उत्तरांचल में योगी-जनों की खोज समाप्त हुई।

द्रोण सागर में रहते हुए योगियों की खोज में निराश स्वामी दयानन्द एक बार बर्फ पर जाकर शरीर त्याग देने की बात भी सोचने लगे थे। परन्तु फिर विचारशील प्राणी की भांति शेष जीवन-भर ज्ञान प्राप्त करने में व्यतीत करने का उन्होंने निश्चय कर लिया।

अब उनका लक्ष्य ज्ञान से ईश्वर प्राप्ति का हो गया था। दयानन्द को विश्वास हो गया था कि योग से मृत्यु पर विजय नहीं प्राप्त हो सकती। मृत्यु तो होगी ही, परन्तु मृत्यु के दुःख से निवृत्ति ज्ञान द्वारा होगी। अतः अब उनका भ्रमण किसी ज्ञानी पुरुष की खोज में प्रारम्भ हुआ। वे उत्तराखण्ड को छोड़ गंगा के किनारे-किनारे काशी तक गये।

पराधीन भारत के दर्शन

उन दिनों भारत एक पराधीन देश था और इसकी पराधीनता का अवलोकन करते हुए अपने भ्रमणों में स्वामीजी ने भारत में फैली अज्ञानता और मूर्खता का व्यापक दर्शन किया। वे एक गांव के अन्दर एक शिव-मन्दिर में रात बिताने के लिये गए तो मन्दिर के द्वार पर एक बहुत बड़े पत्थर की नन्दी की मूर्ति देख, उसके पास ही स्थान को झाड़-फूंक कर वे सोने लगे। इनको नन्दी के पेट में कुछ हलचल सुनाई दी। ये सतर्क हुए तो नन्दी की प्रतिमूर्ति के भीतर से एक आदमी निकला और अपने सामने एक दण्डीधारी हृष्ट-पुष्ट साधु को खड़ा देख एक ओर को भाग गया। उन्होंने देखा कि नन्दी के पेट में सोने के लिये बहुत सुन्दर स्थान बना हुआ है। वे उसमें घुस, द्वार बन्द कर सो गये। दिन चढ़ने पर एक महिला मंदिर में पूजा के लिए मिष्ठान्न लेकर आई। जब वह वृषभ भगवान को भोग लगाने लगी तो स्वामी दयानन्द की नींद खुल गई। महिला ने मिष्ठान्न नंदी के मुंह में रख दिया था, जिसे अंदर से स्वामी जी ने उठा लिया और अपनी भूल का समाधान किया। मिष्ठान्न खाकर वे सोचने लगे, ''लोग भी कितने भोले हैं, जो पापियों द्वारा इस प्रकार ठगे जाते हैं।'' भोली जनता को ठगा हुआ देखकर उनकी आंखों में आंसू आ गये। उन दिनों देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। एक तरफ तो भोली-भाली जनता को पंडे-पुजारी मूर्ख बनाकर ठग रहे थे, और दूसरी तरफ अंग्रेज उन पर

तरह-तरह के कर लगाकर कहर ढा रहे थे। अब तुम सवाल कर सकते हो कि जब हमारी वैदिक संस्कृति इतनी महान थी, जिसका हम ढोल पीटते रहते हैं, तो फिर हमारा देश गुलाम क्यों हुआ था? भारत की पराधीनता या यूँ कहें कि आर्यों की अवनति के कारण इस प्रकार हैं :

आर्यों की बहिष्कृत नीति

आपने हुक्का पानी गिराने की कहावत तो सुनी ही होगी, भाषा की दृष्टि से इसे बहिष्कृत नीति कहा जाता है। दरअसल जो लोग वेदभ्रष्ट यानी कि वेदों के रास्ते का त्याग कर देते थे, उनको सपरिवार या एकाकी रूप से आर्य धर्म से निष्कासित कर दिया जाता था। यही नीति आर्यों की बहिष्कृत नीति थी। प्राचीन आर्य लोभी और बेईमान वणिक को पणिक कहकर दक्षिणारण्य में बहिष्कृत कर देते थे। ऐसे बहुत से आर्य बहिष्कृत होकर दक्षिण प्रांत में जा बसे, बहुत से भारत के पश्चिम, उत्तर, पूर्वी सीमा प्रांतों में जा बसे। आर्य से अनार्य बने ये लोग सशक्त होकर कई बार आर्यों से लड़े भी। आस्ट्रेलिया, दक्षिण भारत में ये लोग आंध्र कहलाए, मिस्र में जाकर यह लोग झल्ल (जुलु) हो गए। नट, कंजर, बेड़िया, बनजारा आदि जातियाँ इन्हीं अनार्यों से विकसित हुई हैं। इनमें फिर रोटी-बेटी के संबंध स्थापित हुए, लेकिन ये लोग वेद ज्ञान से वंचित हो गए।

सगर ने अपने पिता के शत्रुओं का समूल नाश करके शक, यवन, काम्बोज, चोल, केरल आदि जातियों को वशिष्ठ के कहने पर वेदभ्रष्ट करके दक्षिणारण्य में भेज दिया था। इस प्रकार बहिष्कृत होकर आर्यो के बहुत से परिवार पृथ्वी के भिन्न-भिन्न हिस्सों में जा बसे तथा वहाँ के मूल अनार्यों (जो जल प्रलय होने से वैदिक सभ्यता से विच्छिन्न/बहिष्कृत थे) से रोटी-बेटी के संबंध स्थापित करके दस्यु-दास, राक्षस, असुर, महर्षि, वानर, नाग, द्रविड, पारद, खस, पहलव, चीनी, किरात, झल्ल, मल्ल दरद आदि जातियों में मिल गए या परिवर्तित हो गए और वैदिक पुरोहित के अभाव में क्रियाहीन होने से पतित हो गए।

वैदिक सभ्यता के मूल से भिन्न होने पर वाममार्ग की अवधारणा निर्मित हुई, इसी वाममार्ग से शैवमत का विकास हुआ। संपूर्ण अरब भी शैवमत का अनुयायी हो गया था। जब महात्मा बुद्ध की मूर्तियाँ पूजी जाने लगी तो अरब में इसी के अनुकरण पर अनेक देवी-देवताओं की पूजा शुरू हुई। बुद्ध का अपभ्रंश अरब में जाकर बुत हो गया। लेकिन कालांतर में जब मोहम्मद ने प्राचीन सभ्यतानुसार निराकार ईश्वर की कल्पना को सत्य मान करके काव्य शुक्र (काबा) मंदिर की सभी मूर्तियों को तोड़ दिया, तब भी उन पर शैव मत का प्रभाव छाया रहा, अतः उसने वहाँ शिवलिंग स्थापित किया। जिसे आज-कल मुसलमान हज के यात्री 'संगे अवसद' कहते हैं तथा अपने पाप धोने के लिए चूमते हैं। जैसे उत्तर भारत में नमस्ते के स्थान पर अभिवादन में राम-राम, जय सियाराम, हरे कृष्ण हरे राम कहा जाता है तब (प्राचीन काल में) मखःमेदीनी (यज्ञ भूमि) यानी मक्का मदीना में 'ईशालयम् बालकम' अभिवादन के रूप में कहने की प्रथा थी, जो बाद में अपभ्रंश होकर 'सलाम वालेकुम' हो गया। शेख भी ब्राह्मणों के योग से उत्पन्न जाति है। 'एष आत्मेति हो वाचै दतमतमभयमेतद् ब्रह्मैति' अर्थात् शरीर अमृत है, ब्रह्म है, आत्मा है, के आधार पर आप्रीताः (अफ्रीका), मिस्र, आसीरिया, बेबिलोनिया आदि देशों में आर्यों को अपने को ब्रह्म कहने की भावना जड़ पकड़ गई, जिसके आधार पर मृतकों को मसालों में संवारने, वस्त्राभूषणों से सजाने और ममी तथा पिरामिड बनाने की प्रथा चली है।

सूर्यों को कुछ काल वनों में भी रहना पड़ा। स्वमूल आर्य सभ्यता से अनभिज्ञ हो जाने के कारण सूर्यवंशियों में सूर्य पूजा प्रचलित हुई। कोरिया, जापान के राजघराने आज भी अपने को सूर्यवंशी कहते हैं। मिस्र का दमित्र DAMETER या DAMIHA विष्णु है। पूर्व काल में इतिहासकार मिस्र को AEGYPT लिखते थे, जबकि आजकल EGYPT लिखा जाता है। इजिप्त संस्कृत के 'अजपति' शब्द का अपभ्रंश है। काहिरा' कायरो अर्थात् कौरव नगर का अपभ्रंश है। इजिप्त का हर व SEB भारत का शिव ही

है, उनका देव ISIS हमारा वैदिक उषस् एक ही है। Driuidmithraea निर्मित सूर्य देव की मूर्तियाँ और मित्र के मंदिर जिनको यूरोप में मिथराआ (Mithraea) कहते हैं ग्रीस, रोम, जर्मनी, यार्क व चेस्टर तक थे। स्कैन्डीनेविया के गीता साइरस (Geeta Syrus) सूर्यवंशी थे। अरब में यारब Edom Erythous आदि नाम सूर्य ही के हैं। मूलतान (मूल स्थान) में सूर्य ने स्वयं तप (राज्य) किया था।

अगस्त, 1914 थियोसोफिस्टानुसार आस्ट्रेलियावासी बहिष्कृत भारतीयों के वंशज हैं तथा उनकी पुनर्जन्म संबंधी अवधारणा भी आर्यों का होना सिद्ध करती है। आर्यः क्षत्रियों का अक्षय तूण शस्त्र उनके पास आज तक सुरक्षित है। जिसे बूमरांग कहते हैं, यह अपने शत्रु को मारकर मारने वाले के पास फिर वापस आ जाता है। डॉ. जान विल्सन ने लिखा है कि विद्यमान सारे दर्शनशास्त्री इस बात को मानते हैं कि अँग्रेज तथा आर्य एक ही स्रोत के लोग हैं।

नेग्रिटो और अमेरिका के रेड इण्डियन्स भी बहिष्कृत आर्य हैं, वे सूर्यवंशी हैं और पवित्र अग्नि को कभी बुझने नहीं देते। कुछ द्रविड़ बहिष्कृत आर्यों की संतान अवश्य थे, लेकिन अधिकांश द्रविड़ ज्ञानी व तपस्वी ही थे। दक्षिण भारत में आज कुछ जातियाँ अपने को द्रविड़ों की संतान समझते हैं, वास्तव में द्रविड़ उन ऋषि-मुनियों की संतान थे, जो आर्य धर्म का मार्गदर्शन करते थे। Indian Antiquities ग्रंथ के छठे खंड में संपादक महोदय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यूरोप खंड के ड्रुइड भारत से आए ब्राह्मण थे और भारत में वे ब्राह्मण द्रविड़ कहलाते थे।

विश्वामित्र आर्य राजा और ऋषि थे उनके एक सौ पुत्र (नागरिक) अत्यंत विश्वासपात्र थे, उनमें से पचास नागरिक अधिकारों का दुरुपयोग करते हुए दुष्ट हो गए और प्रजा को दुःख देने लगे। विश्वामित्र ने उनको अपने राज्य से निकाल दिया, उनके अधिकांश वंशज दस्यु, शबर आदि हो गए, लेकिन कुछ वंशज मार्गदर्शक बनकर द्रविड़ भी कहलाए।

यहाँ प्रश्न उठता है कि आर्यों की बहिष्कृत नीति पर विश्वास किया

जाए तो यह प्रथा आज क्यों नहीं है? यह प्रथा तो आज भी कायम है। उत्तर भारत में धर्मभ्रष्ट लोगों का हुक्का पानी (बंद कर) गिरा दिया जाता है। लेकिन मूलशंकर ने जब घूमते हुए यह देखा तो उनके मन में विचार आया था कि जब वे पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेंगे, तब वे शुद्धिकरण आंदोलन अवश्य चलाएंगे। भारतीय संस्कृति को भूल गए हैं, उन्हें दोबारा प्रेम के साथ अपनी संस्कृति में मिलाया जा सकता है। अधार्मिक मनुष्यों को धार्मिक बनाना ही शुद्धिकरण कहलाता है। वेद में कहा गया है कि हे विद्वानों! नीचे गिरे हुए मनुष्यों को आप पुनः उन्नत करते हो। हे देवो! अपराध पापादि करने वालों को आप उत्तम जीवन प्रदान करते हो। जल से शरीर, सत्य बोलने से मन तथा विद्या व तप से आत्मा शुद्ध हो जाती है। वह क्या है जो शुद्ध न हो जाए? शास्त्र का वचन है कि

देश भंगे प्रबासे च व्याधिषु व्यसनेश्वपि।
रक्षेदेव स्वेदेहदि पश्चाद्धर्म समाचरेत्॥

अर्थात्, "देश में उपद्रव होने पर, विदेश में, रोग में और घोर आपत्ति के समय जिस प्रकार भी हो सके सर्वप्रथम अपने शरीर, स्त्री-बच्चों, धन-दौलत की रक्षा करें। जब शांति हो जावे तो पुनः शुद्ध होकर अपने धर्म को ग्रहण करें।" आपत्ति काल में शौचाशौच का विशेष विचार न करके सबकी शुद्धि करनी चाहिए, पीछे समय अनुकूल हो जाने पर धर्म का अच्छी प्रकार से सभी आचरण करते हैं। कभी भी किसी भी व्यक्ति को आर्य धर्म (हिन्दू) से बहिष्कृत नहीं करना चाहिए, क्योंकि शास्त्रों का वचन है कि जाति से बहिष्कृत व्यक्ति जो पाप करता है, उससे देश तथा समाज को जो हानि होती है उस पाप का भागी वह समाज है, जो उस पापकर्ता को जाति से बाहर निकालता है।

भारत में शुद्धिकरण की परंपरा प्राचीन काल से रही है। सरस्वती की आज्ञा से कण्व ऋषि मिस्र देश में गए, वहाँ उन्होंने दस हजार अधार्मिक लोगों को धर्म और भाषा सिखाकर आर्य बनाया था। कर्मों के आधार पर वर्ण व्यवस्था कायमकर पृथु नाम वाले को क्षत्रिय राजा बनाया गया।

धर्म के ठेकेदार

धर्म के ठेकेदार पोंगा-पण्डितों ने आर्यों के पतन में मुख्य भूमिका निभाई है। इन्होंने धर्मशास्त्रों की व्याख्या अपने स्वार्थानुसार करके जनता को पथ-भ्रष्ट करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। शास्त्रों में भूत-प्रेत, जादू-टोने की कहानियाँ रची गईं, जिनके फलस्वरूप मक्कार तांत्रिकों का एक समुदाय पैदा हो गया। अशिक्षित व भोली-भाली जनता को तांत्रिकों द्वारा ठगा जाने लगा। सीधे-सीधे वैदिक समाज में अंधविश्वासों व वाह्म आडंबरों का बोलबोला हो गया, जो भारत की सुख-शांति सब छीन ले गया।

गाय की पूजा समस्त वैदिक लोग करते आए हैं और ब्राह्मण तो गाय के बराबर है, वह तो सारे समाज का मार्गदर्शक समझा जाता था, राजदरबार में भी ब्राह्मणों को ही सर्वाधिक सम्मान मिलता था, फिर भी महाभारत युद्ध के बाद उन्होंने राष्ट्रहित की चिंता करनी छोड़ दी। रामायण काल में जनक के साथ उनकी महारानी ने भी हल चलाया था, वहीं महाभारत तक आते-आते पतिव्रता का मंत्र रूढ़िवादिता की हदें पार कर गया था। जब युवती गांधारी अन्धे धृष्टराष्ट्र के राजमहल में प्रथम बार आई तो उसको सब ब्राह्मणों ने शिक्षा दी कि बेटी तुम्हारी शादी होने वाली है, इसलिए थोड़ा गृहस्थाश्रम के बारे में भी सुनो, "गृहस्थाश्रम में प्रत्येक पतिव्रता स्त्री का यही धर्म है वह सदा अपने पति को प्रसन्न रखे और किसी ऐसे सुख का उपभोग नहीं करना चाहिए, जिससे उसका पति वंचित हो।" तब गांधारी को यह पता चला कि तुम्हारे होने वाले पति धृतराष्ट्र अन्धे हैं, तो स्वार्थी पंडितों ने यही पाठ पढ़ाया होगा कि वह भी आँखों पर पट्टी बाँध ले, यही उसका धर्म है और यही पतिव्रत है। यही एक ऐसा मार्ग है जिससे उसका नाम सती स्त्रियों में प्रसिद्ध होगा। परिणामस्वरूप गांधारी ने आँखों पर पट्टी बाँध ली। लेकिन आँखों पर पट्टी बाँधना पतिव्रता का प्रमाण नहीं माना जा सकता, केवल पाखंड कहा जाएगा, क्योंकि शास्त्रों का वचन है कि बाहरी लिंग का नाम धर्म नहीं है, धर्म का संबंध तो मन व विचारों से होता है। उन्नति

दायक कर्म ही धर्म है।

सती प्रथा का प्रचलन भी महाभारत काल में शुरू हुआ। सती होने के लिए वेदों में आज्ञा नहीं है। 'कनक' जैसे पुरोहितों ने माद्री को बहकाया कि यदि वह पांडु के साथ चिता में जीवित जल जाएगी तो वह सती स्त्रियों में सर्वोच्च पूज्य होगी। परिणामस्वरूप माद्री पांडु के साथ सती हो गई। लेकिन देश में एक ऐसी कुरीति का प्रचलन शुरू हुआ कि माद्री के बाद राजा राममोहन राय द्वारा सती प्रथा बंद कराने तक न जाने कितनी अबलाओं को मृत पतियों के साथ जबरदस्ती जलाया गया होगा?

आर्यों की ईश्वर आराधना पद्धति अत्यंत सरल एवं कर्मकांड रहित थी, लेकिन धर्म के ठेकेदारों ने देवी-देवताओं की मूर्तियों के सामने विभिन्न प्रकार का चढ़ावा चढ़वाने की परंपरा शुरू की तथा भक्तों को बताया कि किसी भी संकट के समय देवी-देवताओं की शरण में आ जाओ वे नैया पार लगा देंगे।

सोमनाथ के मंदिर में पंडितों ने नीचे-ऊपर चुम्बक पाषाण लगा रखे थे, जिसके आकर्षण से मूर्ति अधर में रखी थी, जिसे चमत्कार समझ अंधविश्वासी लोग देव मूर्ति के समक्ष लाखों का चढ़ावा चढ़ाते थे। जब म्लेच्छों ने भारत पर आक्रमण किया, तब धर्म के ठेकेदारों ने यही दुहाई दी कि, 'हम क्या कर सकते हैं, दुष्टों का नाश करने के लिए भगवान अवतार लेंगे।' परिणामस्वरूप राजपूत हथियार डालकर मंदिरों में भजन-कीर्तन करने लगे। स्वामी दयानंद जी ने ठीक ही लिखा है कि जब महमूद गजनवी आकर लड़ा था तब अधर में लटकी हुई मूर्ति एक झटके में तोड़ दी गई और पुजारी भक्तों की अत्यंत दुर्दशा हुई और लाखों फौज दस सहस्र फौज से हार गई, जो पोंगा पुजारी पूजा, पुरश्चरण, स्तुति, प्रार्थना करते थे कि "हे महादेव! इस म्लेच्छ को तू मार डाल, हमारी रक्षा कर।" वे अपने चेले राजाओं को समझाते थे कि आप निश्चिंत रहिए। महादेव भैरव अथवा वीरभ्रद को भेज देंगे। वे सब म्लेच्छों को मार डालेंगे या अन्धा कर देंगे। ...हनुमान, दुर्गा व भैरव ने स्वप्न दिया है कि हम सब पापियों का नाश कर देंगे। वे बेचारे

भोले राजा और क्षत्रिय पोंगा पंडितों के बहकाने से विश्वास में रहे। कितने ही ज्योतिषियों ने कहा कि अभी तुम्हारी चढ़ाई का मुहूर्त नहीं है। एक ने आठवाँ चन्द्रमा बतलाया, दूसरे ने योगिनी सामने दिखाई, इत्यादि बहकावट में रहे। जब म्लेच्छों की फौज ने आकर घेर लिया तब दुर्दशा से भागे। कितने ही पोंगा पुजारी और चेले पकड़े गए। पुजारियों ने भी हाथ जोड़कर कहा कि तीन करोड़ रुपया ले लो और मूर्ति मत तोड़ो। मुसलमानों ने कहा हम 'बुतपरस्त' नहीं, किन्तु 'बुतशिकन' अर्थात् मूर्तिपूजक नहीं, किन्तु मूर्तिभंजक हैं। जाकर झट मंदिर तोड़ दिया। जब ऊपर की छत टूटी तब पाषाण पृथक् होने से मूर्ति गिर पड़ी। जब मूर्ति तोड़ी गई, तब कहा जाता है कि 18 करोड़ के रत्न निकले। जब पुजारी और पण्डों पर कोड़े पड़े तब उन्होंने मार के मारे अन्य कोष भी बता दिया।

हम यहाँ आपको बता दें कि सोमनाथ मंदिर तोड़ने से पूर्व महमूद गजनवी ने विक्रमी संवत् 1057 में राजा जयपाल को पराजित कर उससे हर्जाने के तौर पर एक लाख दिनार वसूल किए। विक्रमी 1065 संवत में कांगड़ा से सात करोड़ दिरहम मूल्य के सिक्के और सात लाख चार सौ मन सोना और चाँदी लूटा गया। मूल्यवान आभूषणों व मोतियों का भंडार और जरीदार वस्त्रों की लूट इसके अतिरिक्त थी। वि. 1068 संवत् में थानेश्वर को लूटा और अनेक मंदिर नष्ट किए। चक्रस्वामी की मुख्य मूर्ति गजनी ले जाई गई और अपवित्र करने के लिए सार्वजनिक चौक पर फेंक दी गई। भारत में मंदिरों की जगह मस्जिदें व सूफियों के मठ बनने लगे और गाय की पूजा करने वाला देश, जहां गाय के दूध से सारा परिवार पलता था, वह भेड़-बकरियों के दूध पर निर्भर रहने लगा।

हम यह नहीं कहते कि पूजा पाठ नहीं करना चाहिए, वह तो करना चाहिए, लेकिन हमारे पूर्वजों को पूजा पाठ श्रद्धा से करना चाहिए था, जो न किया गया। श्रद्धा के स्थान पर बाह्य आडंबरों का बोलबाला हो गया था। यहाँ प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि श्रद्धा से पूजा कैसे की जाती है? इस प्रश्न का उत्तर है कि 'श्रद्धा शब्द का निर्माण हुआ है दो शब्दों

'श्रत्' और 'धा' से। 'श्रत्' यानी सत्य और 'धा' यानी धारण करना। मानव की वह प्रकृति जो उसे उसके जीवन में सत्य धारण करने की ओर प्रेरित करे, श्रद्धा है। राम-कृष्ण, दुर्गा, शिवादि के गुणों को धारण करना ही उनके प्रति श्रद्धा है। श्री राम की बात ही लें, भले ही वह भगवान के अवतार हों, लेकिन उन्होंने वनों में विभिन्न कष्ट सहते हुए अपने बाहुबल से राक्षसों को मारकर पृथ्वी पर सुख व शांति स्थापित की। कहने का तात्पर्य यह है कि जब म्लेच्छों ने भारत पर आक्रमण कर मंदिरों को भ्रष्ट किया तब पुजारियों ने यही कहा कि भगवान पर भरोसा रखों वह राक्षसों का नाश अवश्य करेंगे, जबकि उन्हें कहना यह चाहिए था कि जिस प्रकार राम ने राक्षसों को मार गिराया, उसी प्रकार तुम भी अपने बाहुबल से इन म्लेच्छों का सर्वनाश कर दो, क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि जो अपनी रक्षा स्वयं करते हैं भगवान भी उन्हीं की रक्षा करते हैं।

संकट के समय हौसला बढ़ाने की बजाय इन धर्म के ठेकेदारों ने आर्यों में दासवृत्ति के भाव पैदा किए। विदेशी राज्य भारत में स्थापित हो जाने पर कई पुरोहितों ने अपने धर्म, संस्कृति और समाज की जीवन प्रणाली को नष्ट करने पर तुले हुए विदेशी, सत्ताधारी लोगों को भगवान की बराबरी का मानकर उन्हें यहाँ अपने ही बन्धुओं पर स्थापित करने के लिए घोर दासवृत्ति का परिचय दिया। ऐसे एक प्रकांड विद्वान श्री जगन्नाथ पंडित जी के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। उनके संबंध में ऐसा बताया जाता है कि उन्होंने दिल्ली पर अधिकार जमाए म्लेच्छ राजा को 'दिल्लीश्वरों वा जगदीश्वरों वा..." कहा। इस प्रकार अपने ही धर्म का विध्वंश करने वाले विधर्मियों को जगदीश्वर जैसे सम्मान प्रदान कर उनका कद ऊँचा बढ़ा दिया गया। दासवृत्ति के कारण आर्यों के स्वाभिमान का ह्रास हो गया और अच्छे-अच्छे हिन्दू उच्चपदस्थ लोग भी दासत्व में इतने दब गए कि उन्हें दासत्व के वातावरण का पता भी न चलता था। ऐसे ही दासों की कई संतानें आज अपने को हिन्दू मानने को भी तैयार नहीं।

आपसी फूट

भारत को अवनति के कगार पर पहुँचाने में आपसी फूट का भी कम योगदान नहीं है। महाभारत का युद्ध आपसी फूट का ही परिणाम था। भगवान श्रीकृष्ण में युद्ध रोकने व शांति स्थापित करने की तीव्र तड़प थी, तभी तो वह कहते हैं कि "धृतराष्ट्र पुत्रों के बैर को जानता हुआ भी इस संकट में अपने को डाल रहा है, क्योंकि मैं देख रहा हूँ कि युद्ध के परिणामस्वरूप पशु सहित सब पृथ्वी नष्ट हो जाएगी। जो इस मृत्यु पाश से पृथ्वी की रक्षा करेगा, वह महान धर्म का कार्य करेगा। धर्म कार्य करते हुए यदि सफलता भी न मिले तब भी पुण्य की प्राप्ति हो जाती है, इसलिए इस विनाशकारी संग्राम से कुरु-पांडव वंश को बचाने के लिए मैं पूरा प्रयास करूँगा।" श्रीकृष्ण ने आपसी फूट को प्यार में बदलने के लिए दुर्योधन को खूब समझाया, लेकिन उसने स्पष्ट कह दिया कि "मैं जानता हूँ कि धर्म क्या है, पर उसमें मेरी प्रवृत्ति नहीं होती और मैं यह भी जानता हूँ कि अधर्म क्या है, किन्तु उससे मेरा छुटकारा नहीं होता, इसलिए युद्ध किए बिना सुई की नोक के बराबर भी भूमि मैं पांडवों को नहीं दूँगा।"

ऋषि दयानंद ने लिखा है कि जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं, तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है। आपस में फूट से कौरवों-पांडवों और यादवों का सत्यानाश हो गया। सो तो हो गया, परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा या आर्यों को सभी सुखों से छुड़ाकर दुःख सागर में डुबो मारेगा। उसी दुष्ट दुर्योधन, गोत्र हत्यारे, स्वदेश विनाशक नीच के दुष्ट मार्ग पर आर्य लोग अब तक चल कर दुःख बढ़ा रहे हैं। भारत-पाकिस्तान का मनमुटाव आज इसी तरह का मामला है। आपसी फूट के कारण ही भारत पर विदेशी शासन संभव हो सका। बात उन दिनों की है जब सिन्धु में हिन्दू नरेश दाहिर राज्य करता था। उसके शासन पर एक म्लेच्छ यवन ने आक्रमण किया और लड़ाई के मैदान से म्लेच्छ के पैर उखड़ गए। जिस रात वह स्वदेश भागने को ही था कि राजपुरोहित ने यवन राज से जाकर कहा,

"आप मुझे सिन्धु का नरेश बनाने का वचन दें, तो मैं आपकी हार को जीत में बदल दूँगा।" म्लेच्छ राजा ने हाँ कर दी। तत्पश्चात् रात्रि में राजपुरोहित ने मंदिर पर चढ़कर मंदिर का केसरिया ध्वज झुका दिया। प्रातःकाल जो भी सैनिक उठता और मंदिर के ध्वज को झुका हुआ देखता तो कहता कि देवता नाराज हो गया, अब सिन्धु नहीं बचेगा, क्योंकि वहाँ के पंडितों ने प्रजा व सेना में यह अंधविश्वास भर दिया था कि मंदिर का ध्वज झुकने पर सिन्धु नहीं बच सकता। हुआ भी ऐसा ही। म्लेच्छ राजा ने हमला बोला, लेकिन आर्य सैनिकों ने उत्साह के साथ युद्ध में भाग नहीं लिया। दाहिर हार गया, उसे मार डाला गया और उसकी दोनों लड़कियों सूरज और परमाल को मुस्लिम खलीफा को तोहफे के तौर पर भेंट किया गया। राजपुरोहित को यह कहकर मार डाला गया कि जब तुम अपने देश के न हो सके तो हमारे कैसे हो सकते हो? जयचन्द और पृथ्वीराज चौहान में आपसी फूट के कारण ही मुहम्मद गोरी आर्यावर्त को पराधीन करने में कामयाब रहा। यह इतिहास की प्रसिद्ध गाथा है, इसे ज्यादा लिखने की जरूरत नहीं।

आश्रम व्यवस्था का खंडित होना

धर्माचार्यों की अयोग्यता, गृहस्थियों द्वारा संतान को मोहस्वरूप गुरुकुलों में न भेजना, विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा आश्रमों की क्षति, सूफियों द्वारा आश्रमों व मंदिरों पर कब्जा कर उन्हें मदरसों, मस्जिदों आदि में बदलना, अँग्रेजों द्वारा स्कूलों की स्थापना आदि अनेक कारणों से आर्यों की प्राचीन आश्रम व्यवस्था खंडित हो गई। आश्रम व्यवस्था का नष्ट होना भी आर्यों के पतन का मुख्य कारण रहा है।

प्राचीन आर्यों ने आश्रम व्यवस्था में अत्यंत सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक दृष्टि का विनियोग किया था। इस व्यवस्था से समाज में पवित्र और महान भावनाओं का जागरण होता था, कलह, द्वेष आदि की निवृत्ति होती थी, समाज में सुख, संतोष और शांति की अभिवृद्धि होती थी। यह आश्रम

व्यवस्था इस प्रकार की नीति पर आधारित थी कि सबकी जीविका का साधन और लोक की सुस्थिति बनी रहे एवं धर्म, अर्थ तथा काम का मूल होने से मोक्ष की प्राप्ति हो।

आश्रम में आयु, जीवन के उद्देश्य, कर्तव्य एवं उसकी आवश्यकता तथा सामर्थ्य के परिप्रेक्ष्य में जीवन को चार आश्रमों में बाँटा जाता था। पहला आश्रम जो ब्रह्मचर्य आश्रम कहलाता था, में विद्योपार्जन करने वाले छात्रों की व्यवस्था होती थी। इस आश्रम में अनुभवी वानप्रस्थी सदस्य वैज्ञानिकों की तरह जंगलों के बीच निरोग जलवायु के अपने आश्रमों में ब्रह्मचारियों की शिक्षा का प्रबंध करते थे। अपनी-अपनी रुचि के अनुसार विद्यार्थी को गुरु मिल जाता था। शिल्पादि जो जिस प्रकार की विद्या सीखना चाहते थे उनके लिए उसी प्रकार की व्यवस्था की जाती थी और राष्ट्र उन वानप्रस्थी आचार्यों को सब सुविधाएँ तथा साधन जुटा देता था, ताकि विद्यार्थियों का कोई बोझ आचार्यों पर न पड़े। राजा और रंक सभी की संतान एक समान यह शिक्षा पाती थीं। इसी आश्रम में उपनयन, वेदारंभ तथा समावर्तन संस्कार होते थे। बालक गुरुचरणों में बैठकर विद्योपार्जन करके लोक प्रतिष्ठा प्राप्त करता था। लड़के व लड़कियों को विद्वान बनाने के उद्देश्य से राज्य की ओर से विशेष ध्यान दिया जाता था। विवाह से पूर्व लड़कियाँ भी लड़कों की तरह शिक्षा ग्रहण करती थीं, लेकिन उस समय सहशिक्षा न थी।

ब्रह्मचर्याश्रम में अपनी शिक्षा समाप्त करने के बाद जब ब्रह्मचारी गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था तब उसके सामने सादा जीवन और ज्ञान प्राप्ति का आदर्श रहता था। इस कारण वे संयमित ढंग से धनोपार्जन करते हुए 50 वर्ष तक सुखपूर्वक बिताते थे। गृहस्थाश्रम का महत्व सार्वधिक माना जाता था, क्योंकि अन्य तीन आश्रम इसी पर आश्रित थे। गृहस्थी अतिथि यज्ञ को अपना धर्म समझते थे। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी इन तीन आश्रमों में से कोई भी अतिथि आए, तो वह गृहस्थी के द्वार से निराश व भूखा न जाता था। जीवन में ऐसे समय प्रायः आ जाते हैं, जब मनुष्य के पास खाने को कुछ नहीं रहता, व्यापार मंदा हो जाता है,

पैसा चोरी चला जाता है, भौतिक आपदाओं के कारण घर-द्वार नष्ट हो जाते हैं, ऐसे समय में भी गृहस्थी समझते थे कि यदि अतिथि को खिलाए बिना स्वयं खा लिया तो गृहस्थ धर्म नष्ट हो जाएगा। अतः गृहस्थी समझकर पहले उसे भोजन ग्रहण कराते थे, बाद में स्वयं। भौतिक आपदाओं के समय अतिथि यज्ञ उनके लिए रामबाण औषधि थी। उस काल में लोग अपरिग्रह के उपासक थे, वे दान लेना बुरा समझते थे और भीख माँगना उनके लिए मर जाने के बराबर था। वह था आत्मनिर्भरता और आत्मसम्मान का समय। पितृ-ऋण, देव ऋण व ऋषि ऋण चुकाना धार्मिक कर्मकांड का भाग था, इसलिए अतिथि यज्ञ आदि को कोई एहसान के दायरे में नहीं रख सकता था। जीवन के पचास वर्ष पूरा हो जाने के बाद व्यक्ति वानप्रस्थ आश्रम में कदम रखता था, तब दूसरे नवयुवकों को धनोपार्जन का अवसर मिल जाता था। आज 60-70 वर्ष की आयु पाकर भी लोग धनोपार्जन में जुटे रहते हैं, सभा-सोसायटियों के पद नहीं छोड़ते और वृद्धावस्था में भी बच्चे पैदा करते जाते हैं, तो बेचारे नवयुवक किस गड्ढे में जाकर गिरेंगे, उन्हें भी तो रोजगार मिलना चाहिए।

वानप्रस्थी सब प्रकार के ग्राम्य योज्य पदार्थ तथा अन्य सब वस्तुओं का परित्याग कर स्त्री को पुत्रों के पास छोड़कर अथवा साथ लेकर वन में चला जाता था। रमणीय वन में वानप्रस्थी आश्रम बनाता था, वहाँ विद्यार्थियों को पढ़ाता था, समाज के बच्चों को अपना बच्चा मानता था। राम, लव-कुश, भरत, पांडव, कृष्ण आदि सभी वानप्रस्थियों के आश्रमों में ही शिक्षित हुए थे। वानप्रस्थी शाक, कंद-मूल, फल-फूल, जल आदि को भोजन के रूप में ग्रहण करते थे और पंच महायज्ञों का निर्वाह करते हुए अतिथि सेवा आदि भी करते थे। एकलव्य का अँगुष्ठ दान गुरुशिष्य परंपरा के पतन की शुरुआत थी।

जब 25 वर्ष तक वानप्रस्थी विद्यार्थियों को सुशिक्षा देकर समाजसेवा कर लेता था। जीवन की समस्याओं पर गंभीरतापूर्वक विचार कर तपमय जीवन जीता हुआ ज्ञान विषय में खूब मंज जाता था, तब वृद्धा गृहिणी को

आश्रम में छोड़कर संन्यासी बन जाता था। वेदों में भी 'यतया', विजानत इत्यादि पदों में संन्यास का विधान है। कुछ लोग पूर्ण वैराग्य होने पर वानप्रस्थ या गृहस्थाश्रम से पूर्व ब्रह्मचर्याश्रम में भी संन्यास ग्रहण कर लेते थे। संन्यासी ग्रामों, कस्बों और नगरों में घूमकर सामाजिक तथा राष्ट्रधर्म का उपदेश देता था, लोगों को अपने अनुभव बताता था, उनकी शंकाओं का समाधान करता था। आपसी झगड़ों को निपटाना, सामाजिक मर्यादा सिखलाना और धर्म का प्रचार करना संन्यासियों का मुख्य कर्म था। इससे भी बढ़कर जो ज्ञान, अनुभव उन्हें मिला था, उसमें दूसरे संन्यासियों के अनुभव मिलाकर भी वे अपने को पूर्ण ज्ञानी न समझते थे, इसलिए ज्ञान की खोज में निरंतर लगे रहते थे। अत्यंत विनीतभाव से सब संन्यासी वर्षा ऋतु में इकट्ठे होकर विचार-विनिमय करते थे, कठिन प्रश्नों का प्रेमपूर्वक शास्त्रार्थ द्वारा हल निकालकर जनता को उन्नति का मार्ग दिखलाते थे।

वैदिक काल में संन्यासी केवल पृथ्वी पर दृष्टि रखकर चलते थे, जल वस्त्र से छानकर पीते थे और निरंतर सत्य ही बोलते थे। जब कहीं उपदेश या संवादादि में कोई संन्यासी पर क्रोध करता था, तब संन्यासी क्रोध न करते हुए सदा उसके कल्याण की ही कामना व उपदेश करते थे। संन्यासी मुख से बुरा न बोलते थे, नासिका से दुर्गन्ध न सूंघते थे, आँखों से बुरा न देखते थे और कानों से बुरा न सुनते थे।

प्राचीन काल में संन्यासी लोक प्रतिष्ठा, धन उपयोग व पुत्र मोह आदि सबका त्याग करके जनकल्याण व मोक्ष साधनों में ही तत्पर रहते थे। परन्तु कालांतर में आश्रम व्यवस्था का पतन हो जाने के कारण संन्यासी पुत्रेष्णा तो क्या शिष्येष्णा, वित्तेष्णा तो क्या बैंक खातेषेणा तथा लोकेष्णा ही नहीं सीधा मठेष्ठणा के अधिपति बन जाना ही संन्यास कर्म समझने लगे। ऐसे संन्यासियों को ढोंगी और पाखंडी के सिवाय कुछ नहीं कहा जा सकता? संन्यासी के लिए किसी भी मठ या कुटी बनाने का आर्ष साहित्य में निषेध है

आदि शंकराचार्य ने आदि से लेकर अंत तक विशाल भारत में अनवरत्

पैदल घूमते हुए भारत में धार्मिक क्रांति पैदा कर दी थी, उन्होंने संन्यास मर्यादाओं का पालन करते हुए कभी भी एक स्थान पर स्थायी रूप से निवास न कर सतत देशाटन किया। उनके स्थानापन्न आज के शंकराचार्य अपने-अपने मठ में स्थायी रूप से क्यों रहते हैं? इन्हें तो निरंतर धर्म प्रचार यात्राएँ करते रहना चाहिए, शास्त्रों का गहन अध्ययन कर शास्त्रार्थों में अभारतीय मत-मतांतरों को पराजित करते रहना चाहिए। आधुनिक काल में स्वामी दयानंद सरस्वती ने देशाटन करते हुए वेदों का डंका आलम में बजा दिया था। यह उन्हीं की महिमा है कि मोरिशस सहित कई अन्य राष्ट्रों ने वदों पर डाक टिकट तक जारी किए। विश्व में अनेक जगह आर्य समाज स्थापित हुआ। आर्य समाजी महेंद्र चौधरी फिजी तथा जगन्नाथ मोरिशस में प्रधानमंत्री तक बने।

जाति प्रथा

'वेदों में जाति प्रथा का कहीं उल्लेख नहीं है, हाँ यह निर्विवाद है कि वेदों में चातुर्वर्ण्य के सिद्धांत का उल्लेख है जिसे पुरुष सूक्त के नाम से जाना जाता है, लेकिन यह सिद्धांत जाति के जन्म के लिए जिम्मेदार नहीं, क्योंकि समाज में चार वर्ण आज भी हैं। वैदिक काल में शिक्षक को ब्राह्मण कहते थे, आज अध्यापक कहते हैं, वीर और राष्ट्ररक्षक को क्षत्रिय कहते थे आज सिपाही व सैनिक कहते हैं। खेती व व्यापार करने वाले को वैश्य कहते थे, आज किसान और व्यापारी कहते हैं और तीनों वर्णों के लिए श्रम कार्य करने वाले के शूद्र कहते थे आज नौकर, कर्मचारी, चपरासी आदि कहते हैं। वैदिक वर्णव्यवस्था जितनी निरापद और स्वाभाविक थी, स्मृतिकारों ने उसे उतना ही सापद और कृत्रिम बनाकर रख दिया। वेद में शूद्र का अर्थ अपठित और मूर्ख कदापि नहीं, बल्कि तप अर्थात् कठोर कर्म करने वाले को शूद्र कहा गया है। द्विज शब्द ब्राह्मणों के लिए नहीं, बल्कि मनुष्य मात्र के लिए वेदों ने बताया है। माता के गर्भ में जन्म लेने पर प्रत्येक व्यक्ति एकज बनता है। वेद विद्या के गर्भ में जन्म

लेकर विद्वान बनने पर वह द्विज (द्वि-जन्मा) कहलाता है। स्वामी दयानंद के अनुसार जन्मना जायते शूद्रः संस्कारदाद्विज उच्यते अर्थात् जन्म से सभी शूद्र होते हैं, संस्कारों द्वारा उन्हें द्विज बनाया जाता है। जो द्विज नहीं बनता वह शूद्र अर्थात् कठोर कर्म करने वाला रहता है। मनु स्मृति व आपस्तम्ब धर्म सूत्र में स्पष्ट घोषणा है कि कर्मों के अनुसार शूद्र पिता के घर जन्मा योग्य पुत्र ब्राह्मण वर्ण में रखा जाए तथा यदि ब्राह्मण का पुत्र नीच लक्षणों वाला हो तो उसे शूद्र वर्ण में रख देना चाहिए। प्राचीन काल में शूद्रों को पंच महायज्ञ करने का भी अधिकार था। निषाद, चांडाल आदि जो पंचम वर्ण समझा गया है वह भी सूर्योदय के समय हवन करते थे। बाण ने शूद्र स्त्री से पैदा हुए ब्राह्मण पुत्र पाराशव का उल्लेख किया है। ब्राह्मण अन्य सब वर्णों के हाथ का भोजन खाते थे।

प्राचीन काल में चारों वर्ण राष्ट्र के उन्नतिदाता अर्थात् ब्राह्मण ज्ञान प्रदाता, क्षत्रिय रक्षण प्रदाता, वैश्य धन प्रदाता व शूद्र वासोदा (वास प्रदाता) थे। मानव समाज में वास-निवास के लिए जो कुछ आवश्यक था उसके निर्माणकर्ता शूद्र समझे जाते थे। गृह, कोठी, बंगला, भवन, महल, पुल, सड़क, यान आदि का निर्माण करना शूद्र वर्ग का कार्य था। इंजीनियर, ड्राफ्ट्समैन, आर्कीटेक्ट, कारीगर, मजदूर सब शूद्र समपूज्य समझे जाते थे। शूद्र ही श्री (शोभा) का संपादक था। शूद्र श्री का पुत्र है।

ब्राह्मण शर्मा थे, क्षत्रिय वर्मा थे, वैश्य श्रेष्ठी थे। किन्तु श्री का पद इतना शोभनीय और सुंदर है कि सभी वर्गों के देव व देवियाँ अपने आपको श्री, श्रीमान और श्रीमती कहलाना पसंद करने लग गए। प्रत्येक मनुष्य के दाहिने तलुए में पद्म और बाएँ तलुए में 'श्री' होती है। पद्म और श्री के कारण ही पगों का स्पर्श और पूजन किया जाता है। मानव समाज में शूद्र ही पगस्थानीय हैं, पद्म और श्री का अवतार है। शूद्र परिश्रमी हैं और मेहनत से ही पद्म और श्री पदों की प्रतिष्ठा समझी जाती है। अतः शूद्र समाज की श्री शोभा है, शूद्र त्याग और तप का दूसरा नाम है। वैश्य समाज की पूषा है। क्षत्रिय समाज का रक्षक है और ब्राह्मण

समाज का प्रचेता है। प्राचीन काल में चारों ही वर्ण समान समपूज्य और समादरणीय समझे जाते थे।

महर्षि वाल्मीकि शूद्र वर्ण में पैदा होकर महर्षि के परमोच्च पद पर पहुँचे। वीर माता जीजाबाई ने अपनी पौत्री सुखुबाई की शादी दलित परिवार में जन्में निबालकर के लड़के महादजी के साथ की थी और आधुनिक युग में ही शूद्र वर्ण में पैदा होकर डॉ. भीमराव अंबेडकर भारत के संविधान निर्माता बने।

वेदों के बाद मानव धर्म शास्त्र के रचनाकार मनु की कर्मणा व्यवस्था मनुष्य की अपनी प्रकृति के अनुसार जीविका चयन, श्रम विभाजन व विधिविधान है, जिसका कालांतर में धीरे-धीरे जाति के रूप में विकृतिकरण हुआ। यह कब, क्यों और कैसे हुआ कहना मुश्किल है? लेकिन यह आज विकृत जन्मना जाति व्यवस्था के साथ प्रचलित है। वर्ण हमारी समाज व्यवस्था के लिए वरदान थे, लेकिन वे जाति के रूप में विकृत होकर आज भयंकर अभिशाप सिद्ध हो रहे हैं। जाति व्यवस्था का प्रामाणिक हिन्दू धर्म शास्त्रों एवं वेदानुकूल ग्रंथों में कहीं उल्लेख या समर्थन नहीं है। फिर इसको मनु के नाम के साथ जोड़कर मनु और हिन्दू धर्म की निंदा का एक व्यापक राजनैतिक षड्यंत्र चलाया जा रहा है। इस संबंध में डॉ. अंबेडकर का कथन है कि अकेला मनु न तो जाति व्यवस्था को बना सकता था और न लागू कर सकता था फिर भी कदाचित् मनु जाति निर्माण के लिए जिम्मेदार न हो, परन्तु मनु ने वर्ण की पवित्रता का उपदेश दिया है। वर्ण जाति की जननी है और इस अर्थ में मनु जाति व्यवस्था का लेखक भी न हो, परन्तु उसका पूर्वज होने का उस पर निश्चित ही आरोप लगाया जा सकता है।

जन्मना जाति व्यवस्था निःसंदेह अमानवीय व अनुचित है, जिसे अनेक संतों, समाज सुधारकों व राष्ट्रभक्तों ने मिटाने का प्रयास किया, लेकिन यह दुर्भाग्य ही है कि जातिवाद की जड़ें आज और गहरी होती जा रही हैं। आज सारी राजनीतिक पार्टियाँ मुख्यतः जाति केन्द्रित हो उठी हैं। स्वजाति मोह के चलते जाति केन्द्रीयता बढ़ती चली जा रही है, जो दुःखद

और भयावह है।

जाति के कारण छुआछूत प्रथा का जन्म हुआ और अस्पृश्यता से पीड़ित लोगों ने धर्मांतरण कर लिया, धर्मांतरण से राष्ट्रीयता एवं संस्कृति स्वतः ही परिवर्तित हो गई। अपने दुश्मन बन गए और भारत माता के टुकड़े होकर पाकिस्तान व बंगलादेश बन गए। हाय! कितनी भयंकर पीड़ादायक और अभिशाप सिद्ध हुई जाति प्रथा व इसकी अस्पृश्यता। न जाने यह पापिनी कब नष्ट होगी या आर्यों को ही नष्ट करके छोड़ेगी?

एक दिन स्वामी दयानन्द गंगा के किनारे बैठे थे, तो उन्होंने देखा कि एक औरत अपने मृत बच्चे को लेकर अंतिम क्रिया करने आई। महिला ने अपनी आधी साड़ी फाड़कर उसमें शव को लपेटा और फिर उसे गंगा मैया को समर्पित कर दिया। लेकिन फिर वह महिला गंगा में कूद पड़ी और उस बहते शव का वह कफन उतार लायी, जिसे उसने स्वयं ही डाला था। दयानन्द ने उसके पास जाकर पूछा, ''माता, जब कफन उतार लेना ही था, तो फिर डाला ही क्यों था।''

''महाराज! कफन बिना तो मुर्दे को मुक्ति नहीं मिलती।''

''तो फिर क्यों उतारा?''

''उतारा कहां? मैं तो गंगा मैया से मांग कर लाई हूं।''

''मगर क्यों?''

''ताकि इस साड़ी को दोबारा सीकर पहन सकूं।''

''हे भगवान!'' दयानन्द की आंखों से अश्रुधारा बह चली, ''कभी सोने की चिड़िया कहलाने वाले आज मेरे देश की यह हालत हो गई कि मासूम बच्चे के शव को दो अंगुल कफन भी नहीं मिलता!''

उन्होंने अब अपना उत्थान छोड़कर देश के गरीब लोगों के उत्थान के विषय में सोचना शुरू कर दिया। परन्तु गरीब लोगों का उत्थान बिना देश की स्वतंत्रता के संभव नहीं था। एक मंदिर में उनकी बलि देने की चेष्टा भी की गई, लेकिन दयानंद दुष्टों का सामने करते हुए वहां से सकुशल आगे प्रस्थान कर दिए थे।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के प्रणेता

विदेशियों द्वारा देश की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक दुर्दशा और अंग्रेज ों के अत्याचारों का दिग्दर्शन करके दयानन्द स्वामी व्यथित हो उठे। महारानी झांसी, नाना साहेब आदि अनेक गणमान्य व्यक्तियों के अधिकारों का हनन किया गया। राजा-महाराजाओं ने अंग्रेजों के ख़िलाफ आवाज उठाई। पर अंग्रेज ों से मुक ाबला करना साधारण राज्य सत्ता की शक्ति से बाहर की बात थी। इसलिए वे अंग्रेजों को उखाड़ फेंकने के लिए सारे देश में क्रान्ति की ज्वाला एक साथ जलाना चाहते थे। नाना साहब ने इस कार्य के लिए साधु-संन्यासियों द्वारा देश में धर्मप्रचार के सहारे क्रान्ति पैदा करने की महत् योजना बनाई। इसके लिए उन्होंने तीर्थयात्रा का आयोजन किया। जहां उन्हें किसी भी क्रान्तिकारी विचार रखनेवाले देशभक्त साधु-संन्यासी का पता लगता, वे वहीं पहुंच जाते। उन दिनों कनखल (हरिद्वार) में वयोवृद्ध स्वामी सम्पूर्णानन्द जी देशभक्ति के लिए प्रसिद्ध थे। नाना साहब उनके पास गए और देश को आज ादी दिलाने के कार्य में मार्गदर्शन और सहयोग देने की प्रार्थना की, ''महात्मन, देश को आपके मार्गदर्शन की जरूरत है।''

''किसलिए?''

''आज ादी के लिए।''

''ओह, मैं भी आज ाद भारत में ही चिरनिद्रामय समाधि लगाना चाहता हूं, लेकिन आयु अधिक होने से मैं अब देशसेवा नहीं कर सकता।''

इस प्रकार 'स्वामी सम्पूर्णानन्द जी ने 108 वर्ष की अवस्था हो जाने के कारण स्वयं सक्रिय सहयोग देने में असमर्थता प्रकट की।

''पर मार्गदर्शन तो कर सकते हैं।'' इस पर उन्होंने नाना साहब को कहा, ''इस कार्य में दयानन्द सरस्वती नाम के तेजस्वी युवा संन्यासी आपको अच्छा सहयोग दे सकते हैं। उनके मन में भी देश-भक्ति की भावना कूट-कूटकर भरी है। वह मुझे हरिद्वार के कुम्भ के मेले के समय मिले थे। और कुछ समय पूर्व द्रोणासर से लौटने पर मेरे पास आए थे।''

''कहां मिलेंगे दयानन्द सरस्वती?''

''वे मेरे पास आते रहते हैं; अब की बार वे आएंगे तो मैं आपसे मिलने की बात उनसे करूंगा।''

महर्षि दयानन्द गंगोत्री, बद्रीनाथ, गढ़वाल, रुहेलखंड, दोआब होकर पुनः जब स्वामी सम्पूर्णानन्द जी के पास कनखल पहुंचे तो उन्होंने नाना साहब की बात उन्हें सुनाईं। स्वामी दयानन्द को प्रसन्नता हुई। वे मई, 1856 में नाना साहब से बिठूर में मिलने गए। दोनों नेताओं ने अंग्रेज ों को देश में से निकालने के लिए योजना बनाई :

''साधु-संन्यासियों द्वारा देशी सैनिकों में अंग्रेजों द्वारा कारतूसों पर लगाई जा रही 'गौ' और 'सूअर' की चर्बी का उल्लेख करके उनकी धार्मिक भावनाओं को उभारकर अंग्रेज ों के ख़िलाफ विद्रोह पैदा किया जाए।'' संन्यासियों द्वारा गुप्त रूप से कमल पुष्प व रोटियों में गुप्त सन्देशों को भेजने की योजना बनाई गई। महर्षि दयानन्द के नेतृत्व में तमाम सैनिक प्रतिष्ठानों में साधुओं के वेश में क्रान्ति की ज्वाला भड़काई जाने लगी। महर्षि दयानन्द को इस कार्य के लिए दक्षिण में रामेश्वरम् तक, बंगाल में गंगासागर तक, उत्तर में गंगोत्री तक की पैदल यात्रा करनी पड़ी।

स्वामी दयानन्द सरस्वती को ही अब एकमत रूप से 1857 की क्रान्ति का प्रणेता माना जाता है। बैरकपुर छावनी क्षेत्र के बाहर बरगद की छाया में बैठे स्वामी दयानंद सरस्वती जब बीच-बीच में अपना चिमटा बजाकर अलख निरंजन कहता, तो आसपास से गुज रने वाले लोगों का ध्यान बरबस ही उसकी ओर चला जाता। कोई उसे प्रणाम करता, कोई पास जाकर

कुछ पैसे डाल आता। पूरे शरीर में भभूत लगाए, जटाधारी वह साधु मृगछाला पर बैठा था। सामने धूनी लगी थी। एक ओर बड़ा-सा त्रिशूल गड़ा था। दूसरी ओर चिमटा रखा था। बीच-बीच में वह फिर आंखे बन्द करके ध्यान लगा लेता। यह उन दिनों की बात है जब तक स्वामी दयानंद की गुरु विरजानंद से भेंट नहीं हुई थी और वे भभूत लगाते थे और भोले शंकर को अपना इष्टदेव मानते थे। शाम को बैरकपुर छावनी के सैनिकों तक इसकी ख़बर पहुंच गई। उत्सुकता के वश में पड़कर कुछ सैनिक साधु को देखने पहुंच गए। सैनिक बड़े प्रेम से बैठे थे। साधु ने आंखें खोलीं और सामने बैठे लोगों को देखा।

''महाराज, आप कौन हैं? कहां से आए हैं? लगते तो कोई पहुंचे हुए संन्यासी हैं, क्या हाथ भी देखते हैं?'' एक सैनिक ने पूछा।

''एक परवश का इतना साहस? मुझसे सवाल पूछ रहा है?'' साधु बोला।

''हम परवश नहीं हैं। हम तो कम्पनी की फ ौज के सिपाही हैं।'' कुछ सैनिक बोले।

''किसकी कम्पनी, तुम्हारी? तुम उसके पराधीन नहीं, तो और क्या हो? मैं देख रहा हूं, दूर-दूर तक देख रहा हूं। चारों दिशाओं में आग जल रही है। उसकी लपटें आगे बढ़ रही हैं। सब जल जाएगा। सब नष्ट हो जाएगा। तुम्हारा धर्म और संस्कृति कुछ नहीं बचेगा।''

''महाराज, धर्म-संस्कृति तो जब बचेगी, तब बचेगी, पहले आप अपने को तो बचाइए। रात हो रही है महाराज, ठंड बढ़ने लगी है। आप यहां रात कैसे बितांएगे? अगर कोई हर्ज न हो, तो छावनी में चलिए। रात वहीं बिता लीजिए।''

''हर रात के बाद सुबह होती है बच्चा,'' फिर साधु ने पूछ ही लिया था, ''क्या नाम है तुम्हारा?''

''मंगल पांडे। मैं छावनी में सैनिक हूं।''

''हूंऽऽ, ब्राह्मण हो...? पहले के पंडित, पुरोहित तो पत्रा पढ़ा करते थे, ज्योतिष जानते थे, ब्याह-शादी कराते थे, लेकिन अब ब्राह्मण फ ौज

में भी भर्ती होने लगे? देश के शत्रुओं की चाकरी करने लगे। राम...राम देश का बड़ा दुर्भाग्य है।''

''ग़रीबी, मजबूरी और बेरोजगारी कारण है फ़ौज में भर्ती होने का, किन्तु यहां मेरा धर्म-भ्रष्ट नहीं हो सकता। मैं जाति से बाहर कभी नहीं हो सकता। मुझे अपना धर्म प्यारा है, मातृभूमि से लगाव है। मैं धन कमाने के लिए नौकरी करने आया हूं, ईमान बेचने नहीं।''

साधु काफ़ी देर तक ध्यान लगाए रहा। जब आंखें खोली, तो मंगल पांडे ने फिर कहा, ''तो अब चलें महाराज?'' साधु ने बिना कुछ बोले स्वीकृति दे दी।

मंगल पांडे ने अपनी ही बैरक में साधु को ठहराया। वहीं भोजन आदि का प्रबन्ध भी किया। सैनिक साधु से कुछ प्रवचन सुनना चाहते थे, लेकिन उसका क्रोध देखकर किसी की हिम्मत न थी। आख़िर साधु ने ही कहना आरंभ किया, ''मुझे इस बात से बहुत ग़ुस्सा आता है कि हमारे धर्म, देश और जाति पर विदेशी लोग आक्रमण कर रहे हैं और हम उनका विरोध करने के बजाय उनकी मदद करते हैं। एक तरफ़ भारत के लोगों को अंग्रेज़ शासक ईसाई बना रहे हैं, दूसरी ओर भारतीय सिपाही उनकी सेना में भर्ती होकर अपने ही लोगों के विरूद्ध लड़ते हैं। क्या हम लोगों का खून ठण्डा हो गया है? आख़िर हम कब जागेंगे?''

मंगल पांडे ने समझ लिया कि यह साधु के वेश में ज़रूर कोई महान क्रान्तिकारी है, वरना किसकी हिम्मत जो अंग्रेज़ों की छावनी में ऐसी बातें कर सके।

''महाराज, हमें क्या करना है? हमें स्पष्ट रूप से बताइए?'' मंगल पांडे ने पूछा।

साधु ने कहा, ''मित्रों, वक़्त आ गया है, जब अपनी धरती, अपने धर्म और अपनी आज़ादी की रक्षा के लिए हमें बलिदान देना होगा। सौ दिन भेड़ की तरह जीने से अच्छा है, एक दिन शेर की तरह लड़कर मर जाना। हमारी आपसी फूट, अपने ही लोगों की दग़ाबाज़ी और धोखे का फ़ायदा उठाकर अंग्रेज़ों ने चारों ओर अपना राज फैला लिया है। नवाबों,

राजाओं को कमज़ोर करके अनेक राज्य हड़प लिए हैं। दिल्ली के बादशाह के साथ भी धोखा किया गया है। चारों ओर अंग्रेज़ हमारी दौलत लूट रहे हैं और उसे अपने देश में भेज रहे हैं, पर अब यह सब बर्दाश्त नहीं होगा। आप सब बग़ावत के लिए तैयार हो जाओ।''

''लेकिन हमारे अकेले लड़ने से क्या हो सकता है?'' एक सिपाही ने पूछा, ''अकेला चना तो भाड़ भी नहीं भून सकता।''

''किसने कहा कि तुम अकेले हो? मैं तुम्हें स्पष्ट बताता हूं कि तुम अकेले नहीं हो। चारों ओर क्रान्ति की तैयारी हो रही है। एक ही दिन सारे देश में क्रान्ति की लपटें धधक उठेंगी। तब अंग्रेज़ लोग बस भागते दिखाई देंगे।'' साधु ने आगे कहा।

कुछ ही देर बाद उसने झोले से एक शीशी निकाली, फिर सबको उसका थोड़ा-थोड़ा पानी देकर बोला, ''यह गंगाजल है। शपथ लो कि मैं जो भी जानकारी आप लोगों को दूंगा, उसे किसी को नहीं बताओगे।''

सबने गंगाजल लेकर प्रतिज्ञा की, तो साधु शान्त होकर बोला, ''सारे देश में अंग्रेज़ों की हुक़ूमत के ख़िलाफ़ बग़ावत की योजना कानपुर के पास बिठूर में बनी है। पेशवा बाजीराव के गोद लिए पुत्र नाना साहब ने यह योजना बनाई है। उन्होंने देश-भर में घूम-घूमकर लोगों को क्रान्ति के लिए तैयार किया है। उनका कहना है कि भारत के सब हिन्दू-मुसलमान एक झंडे के नीचे मिलकर अंग्रेज़ों को देश से बाहर निकाल दें। उसके बाद अपने देश का शासन अपने ही लोग चलाएं। यही ख़बर देने मैं आया हूं। यह समझ लो कि बैरकपुर से पेशावर तक और लखनऊ से सतारा तक हज़ारों साधु और फ़क़ीर घूम-घूमकर हर एक पलटन में क्रान्ति फैलाने का प्रयास कर रहे हैं।''

''तो हम सब भी क्रान्ति के लिए तैयार हैं? कहें, तो कल ही छावनी से निकल पड़ें?'' मंगल पांडे ने कहा।

''नहीं-नहीं, इतनी जल्दी नहीं'', साधु ने कहा, ''सब जगह पूरी तैयारी हो जाने दो, वरना अंग्रेज़ सावधान हो जाएंगे। पहले अपने यहां और आस-पास की पलटनों के सब लोगों को तैयार करो। इसके लिए नेताओं

ने दो मुख्य चिह्न बनाए हैं। एक है कमल का फूल और दूसरा है रोटी। किसी एक पलटन का सिपाही फूल लेकर दूसरी पलटन में जाता है। उस पूरी पलटन के सिपाहियों के हाथों से वह फूल निकलता है। जिसके हाथों में फूल सबसे आखिर में पहुंचता है, उसका काम है कि वह उसे दूसरी पलटन तक पहुंचा दे। कमल का फूल सारे सिपाहियों के हाथों से होकर निकलने का मतलब है कि वे सब बग़ावत के लिए तैयार हैं।''

साधु ने आगे बताया, ''जनता में भी क्रान्ति की सूचना फैलाई जा रही है। जनता की मदद के बिना भला क्रान्ति कैसे सफल होगी? इसके लिए रोटी का चिह्न चुना गया है। एक गांव का चौकीदार अपने गांव में बनी रोटियां दूसरे गांव के चौकीदार तक पहुंचाता है। दूसरे गांव का चौकीदार उनमें से ख़ुद खाता है और बाक ी रोटियां दूसरे लोगों को खिला देता है, फिर वह वैसी ही रोटियां बनाकर दूसरे गांव के चौकीदार को देता है। इस तरह मान लिया जाता है कि गांव की जनता क्रान्ति के लिए तैयार है।''

''तो हम लोग भी कमल का फूल अपनी पलटनों में घुमाएं?''

''हां, लेकिन बड़ी सावधानी से। क्रान्ति की तैयारी भी गुपचुप रूप में शुरू कर दो। हमारे नेता जल्दी ही क्रान्ति की तिथि तय करने वाले हैं। उसकी ख़बर ठीक समय पर मिल जाएगी।''

कमरे में सन्नाटा छा गया। साधु उठा और अपना सामान लेकर चल दिया। मंगल पांडे और अन्य सैनिक उसे बाहर तक छोड़ने आए।

मंगल पांडे ने विदाई देते हुए कहा, ''महात्मन् कहीं हम कुछ गलत तो नहीं कर रहे?''

''ऐसी शंका मत करो बेटा। हम कुछ गलत नहीं कर रहे। हम तो भारत माता की पराधीनता की बेड़ियां काटने का प्रबंध कर रहे हैं और इस युद्ध में आप सब लोगों को भारत माता के कंठ में अपने नरमुंडों की माला बनाकर पहनानी होगी यानी कि अपना बलिदान देना होगा, क्योंकि कोई भी क्रान्ति बिना बलिदान के सफल नहीं होती।''

''हम अवश्य अपना बलिदान देंगे,'' मंगल पांडे ने कहा, ''भारत माता की स्वाधीनता के लिए तो हम इस जन्म में ही नहीं अगले जन्म में भी

बलिदान देने के लिए तत्पर हैं।''

''अगर सब कुछ ठीक रहा तो अगले जन्म में बलिदान देने की आवश्यकता नहीं होगी।'' उस साधु ने कहा, ''ईश्वर देश का कल्याण करे और आपको देश पर बलिदान देने के लिए और अधिक दृढ़ प्रतिज्ञ करे।''

मंगल पांडे अत्यंत धार्मिक प्रवृत्ति के इंसान थे। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के वे रक्षक ही नहीं चिंतक भी थे और शास्त्रों को लेकर संत-महात्माओं से चर्चा करते रहते थे। एक दिन उन्होंने अपने गुरु उस साधु से पूछ ही लिया था, ''महात्मन् क्या भारत माता की स्वतंत्रता के लिए सरकार से विद्रोह करना उचित कदम हो सकता है।''

''बिलकुल हो सकता है,'' उस साधु ने कहा, ''ये विदेशी हमारे शासक हैं, इसलिए ही इनकी बात नहीं माननी चाहिए, वरन यह भी देखना चाहिए कि देश तो हमारा ही है और ये लोग तो हमारे ही घर में हमारे ही स्वामी बने हुए हैं इसलिए हमारा पहला कर्तव्य घर में चौधरी बने विदेशी आक्रांताओं को भगाना होगा।''

''यानी कि हमारा कर्म सत्कर्म होगा।''

''हां आपका कर्म सत्कर्म ही होगा,'' उन्होंने आगे गीता का उद्धरण देते हुए कहा,

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥

तू नियत कर्म को कर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना ही श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तो शरीर-यात्रा (निर्वाह) भी कदाचित नहीं हो सकेगी।

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर॥

यज्ञार्थ किये कर्म के अतिरिक्त कर्म से पुरुष संसार से बँधता है। हे वीर! आसक्तिरहित होकर यज्ञ के निमित्त कर्म को भली प्रकार कर।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥

प्रजापति (परमात्मा) ने आरम्भ में प्रजा की रचना यज्ञ रूप में ही की थी और (मनुष्य को कहा था कि) इस (यज्ञ) के द्वारा ही वृद्धि को प्राप्त होवो। इस यज्ञ से ही तुम्हारी इच्छित कामनाएँ पूर्ण होंगी।

इस यज्ञ द्वारा देवताओं (विद्वान लोगों) को सन्तुष्ट करते रहो और वे देवता (विद्वान लोग) तुम्हारी उन्नति करते रहें। इस प्रकार परस्पर सन्तुष्ट करते हुए श्रेय (कल्याण) को प्राप्त करोगे।

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥

यज्ञ से प्रभावित देवता (दिव्यगुणवाली शक्तियाँ) तुम्हारे इच्छित भोग तुमको देंगे, क्योंकि उनका ही सब-कुछ दिया हुआ है, इस कारण उनको दिये बिना जो भी मनुष्य सब-कुछ का स्वयं ही भोग करता है, वह चोर ही है।''

''महात्मन् आप कर्म के बारे में बताते-बताते यज्ञ के विषय पर क्यों चले गए।''

''मंगल सुनो, देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष की शुरुआत करना ही एक यज्ञ है, इसलिए गीता के इन अंशों को समझाने का यही तात्पर्य था मेरा। कर्म ही यज्ञ है।''

मंगल पांडे धर्म में गहरी आस्था रखते थे। वे हिन्दू धर्म को एक महान धर्म मानते थे और देश की संस्कृति पर विदेशी कुठराघात को लेकर हमेशा परेशान रहते थे। एक बार दमदम छावनी के कुछ सैनिक बैरकपुर छावनी में आए। रामदेव सिंह, भुजबल पांडे, नारायण और घोसी ने मंगल पांडे से भेंट की। उन्होंने इशारों में कहा कि कुछ गुप्त बातें करनी हैं। मंगल पांडे ने लक्ष्मण, किशन सिंह और छोटेलाल को बुलवा लिया, फिर वे सब किशन सिंह की बैरक में जमा हो गए।

''कल हमारी छावनी में जो कुछ हुआ, पहले उसे आप लोग सुन लें'', रामदेव बोला, ''मैंने दमदम डिपो में तैनात था। मैंने सेना में सामान

उठाने वाले खलासी को दूसरी ग्रेनेडियर के एक सैनिक को टोकते सुना। वह कह रहा था, सिपाही जी, जरा अपने लोटे से थोड़ा पानी तो पिला दीजिए।

''इस पर सैनिक भड़ककर बोला, ''यह क्या हास्य-विनोद है? जानता नहीं, तेरी छूत से लोटा तो लोटा, मैं भी भ्रष्ट हो जाऊंगा।''

''खलासी चौंककर रह गया। तभी सैनिक फिर कहने लगा, ''लोटे की धार तेरे हाथों पर गिरेगी और मेरा लोटा अपवित्र हो जाएगा। इसलिए मैं तुम्हें पानी नहीं पिला सकूंगा।''

खलासी क्रोधित हो गया और चिढ़कर कहने लगा, ''मुझे अपने लोटे से पानी पिला दोगे, तब तो तुम और तुम्हारा लोटा दोनों ही भ्रष्ट हो जाएंगे, लेकिन जब गाय और सूअर की चर्बी चबाते हो, तब कुछ नहीं?''

सिपाही चौंक पड़ा। उसे हैरानी हुई कि वह क्या कह रहा है?

खलासी ने तुनककर कहा, ''जब इस बार नई बंदूक ों के साथ क वायद करते समय कारतूसों के सिरे मुंह से काटो, तो उसके बाद बताना कि गाय की चर्बी का स्वाद आया या सूअर की।''

मंगल रामदेव की बात सुनकर बोला, ''तो इसका मतलब नई बन्दूक ों के कारतूसों में चिकनाहट के तौर पर सूअर और गाय की चर्बी इस्तेमाल की जा रही है?''

''अब क्या करें? ये आंग्ल तो हर तरह से हमारा धर्म भ्रष्ट कर हमें ईसाई बनाने में लगे हैं।'' सब चिंता में पड़ गए।

''यह समाचार सभी पलटनों के सिपाहियों को बता दें। कह दें कि उन कारतूसों का इस्तेमाल करने से साफ मना कर दें।'' मंगल ने कहा।

किशन सिंह ने पूछा, ''तुम्हारी छावनी में कमल का फूल पहुंचा? हमें यह जानने की प्रबल इच्छा हो रही है।''

''हां, पर उस काम में अभी देर है। यही तो डर है कि कहीं समय से पहले ही क्रान्ति न हो जाए।'' रामदेव ने उत्तर दिया।

''इससे कोई अंतर नहीं पड़ेगा।'' मंगल पांडे ने कहा, ''सारे देश में अंग्रेजों के प्रति रोष भरा हुआ है। यहां तक कि साधु-संन्यासी भी

धर्म-कर्म अब देश की स्वतंत्रता को ही बता रहे हैं।

इसी बीच बैरकपुर छावनी में चर्बी वाले कारतूसों के प्रयोग पर बेहद दबाव पड़ रहा था। भारतीय सिपाही इसके लिए तैयार न थे। उन्होंने स्पष्ट कह दिया था कि इन कारतूसों को हाथ नहीं लगाएंगे। दूसरी तरफ क्रान्ति के लिए भी वे तैयार थे, लेकिन फौज के भारतीय अधिकारी उन्हें बार-बार समझाकर शान्त कर रहे थे।

किसी भी बात की चर्चा जब चलती है तो भला फिर वह रुकती ही कहां है? बात बढ़ी और बढ़ती ही चली गई। मेरठ शहर के लोग भी कहने लगे कि भारत के सिपाहियों का धर्म भ्रष्ट किया जा रहा है। छावनी की प्रत्येक बैरक में गुस्सा फैलने लगा। सिपाहियों ने छोटे अंग्रेज़ अफसर से पूछा। इस बारे में उसके पास कोई जानकारी नहीं थी। उसने मामला अपने बड़े अफसर मेजर जनरल जी.बी. हिअर्सी को बताया, जो बैरकपुर की डिवीजन का कमांडर था। जी.बी. हिअर्सी ने इस समस्या पर गहराई के साथ विचार किया। आख़िर वह इस नतीजे पर पहुंचा कि वह झूठ बोलकर सिपाहियों को समझाएगा। उन्हें ख़ूब तसल्ली देगा। इस तरह उनके मन का सारा वहम निकाल देगा।

आंग्ल बड़े ही चतुर होते हैं। लोगों को अपनी चाल में अच्छी तरह फंसा लेते थे, क्योंकि उस समय भारतीय अत्यंत भोले थे। जी.बी. हिअर्सी ने उन्हें तसल्ली दी कि जिन कारतूसों पर गाय और सूअर की चर्बी लगाई जा रही है, वे अभी सिपाहियों को नहीं दिए गए हैं। उनका इस्तेमाल ही नहीं हुआ है। ये पहले वाले कारतूस हैं, जो सबको दिए जा रहे हैं।

लेकिन बात नहीं बनी। सिपाहियों की समझ में कुछ नहीं आया। वे ज्यों-के-त्यों शंका से भरे रहे और एक-दूसरे से कहने लगे कि पहले जो कारतूस हमें मिलते थे, उनकी चिकनाई कुछ और थी, यह चिकनाई तो ऐसी है कि पूरा कारतूस ही चिपचिपा हो जाता है और उसमें से बदबू आती है। साहब लोगों ने ऐसा सिर्फ तसल्ली देने के लिए कह दिया है। इस तरह भारी गुस्से ने जन्म ले लिया। बाज़ारों में यहां-वहां ग़ुस्साए लोग नज़र आने लगे। पंडितों, मौलवियों में एक ही बात चल रही थी, ऐसी

बात सहने के बदले जवानों को डूब मरना चाहिए।

अंग्रेजों के प्रति रोष बढ़ता ही गया। नौबत यहां तक आ गई कि सिपाहियों ने साफ इनकार कर दिया कि नए कारतूस छुएंगे भी नहीं। मेजर जनरल जी.बी. हिअर्सी घबरा गया। उसने मुख्य अधिकारी को कोलकाता ख़बर भेजी। वह समस्या का समाधान चाहता था। उसे जल्दी थी, क्योंकि बैरक में विरोध फैलता ही जा रहा था।

आंग्ल सेना के अधिकारियों को कम्पनी सरकार की ओर से ये आदेश भी मिले कि अगर मामला समझाने से नहीं सुलझता है, तो हिन्दुस्तानी सिपाहियों के साथ कड़ाई की जाए और उन्हें दंड दिया जाए। यहां तक कहा गया कि जिस डिवीजन के सिपाही अधिक विद्रोह करें और बग़ावत पर उतारू हों, उनको पहले धोखे में रखा जाए, फिर किसी दूसरी बैरक में ले जाकर नौकरी से हटा दिया जाए। कम्पनी सरकार देख रही थी, सुन रही थी और समझ रही थी कि नए कारतूसों के मामले में उसे कोई सफलता नहीं मिल रही है। इसलिए उनकी चिन्ता बढ़ रही थी और डर था कि कहीं बग़ावत बहुत बड़ा रूप न ले ले। परंतु देश का इतिहास शीघ्र ही एक नई करवट लेने वाला था, इस बात में कोई संदेह नहीं था। प्रकृति परिवर्तनशील है, इसलिए इतिहास तो करवट लेकर रहेगा ही।

नाना साहब, महारानी लक्ष्मीबाई, तात्यां टोपे, अजीमउल्ला खां आदि नेताओं ने निश्चित तिथि को एक साथ सारे देश में विस्फोट करने की योजना बनाई। दुर्भाग्यवश योजना से पूर्व ही मेरठ और रुड़की के सैनिक प्रतिष्ठानों में क्रान्ति की ज्वाला फूट पड़ी। कुछ विलासी और स्वार्थी राजाओं ने सहयोग भी नहीं दिया। अंग्रेजों ने देशभक्त सैनिकों एवं प्रजाजनों को अमानवीय ढंग से कुचल दिया। महारानी झांसी लक्ष्मीबाई युद्ध में बलिदान हो गईं। तात्यां टोपे भी शहीद हो गए। नाना साहब तथा अजीमउल्ला खां को महर्षि दयानन्द ने कहा, ''सौराष्ट्र की तरफ चले जाओ, वहां अंग्रेजों का विशेष प्रभाव नहीं है। देशी राज्यों के कुछ राजे-महाराजे देशभक्त हैं; उनके सहयोग से शायद कुछ कार्य हो सके।''

''भगवन् आपकी जो आज्ञा। पर...''

"पर क्या?"

"मेरी इच्छा आर्य राष्ट्र नेपाल से होकर अफगानिस्तान जाने की है।"

"आपकी उचित इच्छा है, अच्छा आप नेपाल ही चले जाएं।"

"धन्यवाद भगवन्!"

इस प्रकार नाना साहब अपने साथियों के साथ नेपाल चले गए। वहां अपने व्यक्तियों द्वारा एक स्थान पर आग लगवाकर यह प्रसिद्ध कर दिया कि नाना साहब मर गए। पुलिस तथा गुप्तचर विभाग के व्यक्तियों से पीछा छुड़ाने के लिए यह योजना बनाई गयी। अंग्रेज अधिकारियों को विश्वास हो गया कि नाना साहब अब इस दुनिया में नहीं रहे। नाना साहब यहां एक साधु के रूप में नेपाल से अफगानिस्तान गए। वहां एक सिन्धी व्यापारी, जो काजू, किशमिश, अखरोट आदि सूखे मेवे का कार्य करते थे, उनके साथ सिन्ध के शिकारपुर में उनके पास पहुंचे। सिन्धियों की साधु-सन्तों के प्रति बड़ी श्रद्धा होती है। प्रतिभाशाली विशालकाय इस संन्यासी को उस व्यापारी ने बड़ी श्रद्धा से कुछ दिन अपने पास रखा। कुछ दिन वहां रहकर थारपारकर बदीन के मार्ग से होकर नाना साहब साधु के वेश में कच्छ के प्रसिद्ध नारायण सरोवर तीर्थस्थान होकर मोरबी पहुंच गए। 'मोरबी नरेश स्वाभिमानी देशभक्त हैं', यह उन्होंने महर्षि दयानन्द से सुन रखा था। मोरबी के नगर-सेठ को जब यह पता लगा कि शहर में एक विद्वान और प्रतिभाशाली साधु आया है, तब वे उसको अपने घर ले गए, "भगवान! आपके आने से मेरी कुटी पवित्र हो गई।"

"वह तो ठीक है, भिक्षा क्या दोगे?"

"मतलब!" भक्त सकपकाया।

"भक्त, चिंता मत करो, मेरी भिक्षा यही है कि गरीबों की हमेशा मदद करते रहो।"

और फिर नाना साहब कुछ समय वहां रहकर भावनगर के पास शिहोर नामक स्थान पर अपने साथी अजीमउल्ला खां को मिलने गए, वह पहले ही फ कीर के वेश में वहां पहुंच गए थे। नाना साहब भी शहर शिहोर से एक मील की दूरी पर एक रमणीय स्थान पर, जहां झरने बहते थे,

'दयानन्द योगी' के नाम से कुटिया बनाकर रहने लगे। दोनों क्रान्तिकारी प्रायः रात्रि को आपस में मिलते थे। शिहोर के पास ही सोनगढ़ में अंग्रेज ों का सैनिक प्रतिष्ठान था। अंग्रेज ों को दयानन्द योगी पर कुछ सन्देह-सा होने लगा। इसकी जानकारी नाना साहब को अजीमउल्ला खां द्वारा मिली। नाना साहब वहां से आंख बचाकर मोरबी नगरसेठ के यहां पहुंच गए। वहां काफ ी समय रहे। अवस्था और प्रवासों ने शरीर को जीर्ण-शीर्ण बना दिया था। मृत्यु सिर पर सवार हो गई। मरने से पूर्व उन्होंने मोरबी नरेश सरवाघजी ठाकुर को अपने पास बुलाकर अपनी गुप्ती देते हुए कहा, "मेरे मरने पर इस गुप्ती को खोलना। मेरी मृत्यु पर दाह संस्कार करना तथा अपने राज्य का विकास करना।"

अंततः एक दिन साधु के वेश में नाना साहब की मृत्यु हो गई। सरवाघजी ठाकुर ने जब गुप्ती खोली तो उसमें से अमूल्य हीरे और जवाहरात निकले। नाना की शानदार श्मशान-यात्रा निकाली गई। उनका दाह-संस्कार किया गया, वहां एक समाधि बनाई गई। मोरबी रेलवे-स्टेशन के पीछे, वहां इस समय आश्रम भी बन गया है। आगे चलकर मोरबी नरेश सरवाघजी ठाकुर ने गुप्ती के धन से मोरबी का योजनापूर्वक सुन्दर निर्माण किया। रेलवे लाइन डलवाकर ट्रेन की व्यवस्था भी की।

सन्' 57 की क्रान्ति में असफलता मिलने पर महर्षि दयानन्द हताश और निराश हो गए। उनके एक शिष्य ने पूछा, "भगवन! देश में क्रान्ति असफल होने के क्या कारण हैं?"

"देश में एक विचारधारा, एक जाति, एक संगठन, एक भाषा, एक राष्ट्र का नितांत अभाव है, इसी कारण देश स्वतंत्र नहीं हो सका।"

"तो देश स्वतंत्र कब होगा?"

"करीब सौ वर्ष बाद, क्योंकि राष्ट्रीय एकता के विकास में इतना समय तो लग ही जाएगा।"

"तो आप अब क्या करेंगे?"

"स्वामी सम्पूर्णानंद की सेवा...।"

और इस प्रकार उन्होंने अपना मार्ग बदल दिया।

गुरु के श्री चरणों

उन दिनों हमारा देश सामाजिक कुरीतियों के जाल में जकड़ा हुआ था। भूत-प्रेत, जादू-टोने और न जाने कैसी-कैसी बातें होती थी यहां। सामाजिक कुरीतियों के आगे विज्ञान का उदय भी फीका पड़ रहा था। लोग इतने भ्रमित हो चुके थे कि भरी दोपहरी में ही अपनी ही परछाई से डर जाया करते थे और ऐसे में भला अंग्रेजों को इस देश से कैसे भगाया जा सकता था, इसलिए सबसे पहले जरूरी यह हो गया था कि देश से अंधविश्वासों और सामाजिक कुरीतियों का खात्मा किया जाए और यह सब तभी संभव था, जब लोगों में ज्ञान की ज्योति जलाई जाती। पिछले अध्याय में हम आपको बता ही चुके हैं कि आर्यों का पतन क्यों हुआ था और अब स्वामी दयानंद उन पतन के कारणों को जानकर उनको जड़ से मिटाने का ही संकल्प ले चुके थे। सामाजिक कुरीतियों, कुप्रथाओं की समस्याओं के समाधान की जानकारी लेने के लिए महर्षि दयानन्द, स्वामी सम्पूर्णानन्द की सेवा में गए।

''भगवान, देश को पराधीनता व सामाजिक कुरीतियों ने खोखला कर दिया है, इस समस्या का समाधान आखिर कैसे सम्भव है?''

''पुत्र, इसका समाधान आखिर कैसे सम्भव नहीं।''

''तो फिर?''

''इस समस्या के समाधान के लिए पहले भारतीयों को जानना होगा

कि वे कौन हैं, क्योंकि भारतीय अपना प्राचीन गौरवशाली इतिहास भूल चुके हैं, और जो अपना इतिहास भूल जाता है, वह जाति ही विश्व के नक्शे से स्वतः मिट जाती है।''

''तो भारतीयों को अपना गौरवशाली इतिहास कैसे याद दिलाया जा सकता है?''

''इसके लिए कठोर तपस्या व आर्ष ज्ञान की जरूरत है।''

''वह कहां मिलेगा?''

''क्या तुम सचमुच नये भारत का निर्माण करना चाहते हो?''

''जी भगवान!''

''तो फिर मथुरा में मेरे शिष्य स्वामी विरजानंद के पास चले जाओ, वे ही तुम्हारे कल्याण का मार्ग प्रशस्त करेंगे।''

''धन्यवाद भगवान!''

इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने मथुरा की ओर अपने क्रांतिकारी कदम बढ़ाए। उस दिन अमावश की घोर अंधेर रात्रि थी। रात के बारह बज चुके थे। ऐसे घोर अंधकार में सारा संसार सोया पड़ा था। लेकिन एक जिज्ञासु मथुरा की गलियों में स्वामी विरजानंद की कुटिया तलाशता फिर रहा था। आखिरकार रात्रि में पहरा दे रहे नगर रक्षकों से स्वामी दयानन्द ने स्वामी विरजानंद की कुटिया का पता पूछ जैसे ही बाहर से दरवाजा खटखटाया, तो अंदर से आवाज आयी, ''कौन?''

''यदि यह पता होता, मैं कौन हूं, तो आपका दरवाजा ही क्यों खटखटाता?'' जिज्ञासु दयानन्द ने उत्तर दिया।

''आह! लगता है तुम कोई सत्य के अन्वेषक और आर्ष ज्ञान के प्यासे हो।'' कहकर विरजानंद ने कुटिया का दरवाजा खोल दिया।

स्वामी दयानन्द ने दरवाजा खोलने वाले प्रज्ञाचक्षु के चरण स्पर्श करते हुए कहा, ''मुझे अपने चरणों में स्थान दें गुरुवर।''

''आपका स्थान चरणों में नहीं, मेरे हृदय में है।'' विरजानंद ने उसे हृदय से लगाते हुए कहा।

विरजानंद दण्डी ने फिर स्वामी दयानन्द से पूछा, ''क्या पढ़े हो?'' दयानन्द ने पुस्तकों के नाम कह सुनाए।

दण्डी जी ने फिर पूछा, ''क्या ये पुस्तकें पास में हैं?''

'हां' कहने के साथ ही आज्ञा मिली, ''इन सबको यमुना में डाल दो।''

दयानन्द ने मन में सोचा, 'जिन पुस्तकों के लिए सारे देश की खाक छान मारी क्या वे व्यर्थ हैं? यदि व्यर्थ हैं तो इन्हें यमुना में डालने में ही भलाई है, लेकिन यदि इनमें कुछ ज्ञान छिपा है तो फिर? इसलिए क्या कहीं छिपा दूं!'

'परन्तु गुरु पाना सहज नहीं। पहली ही आज्ञा तोड़ी, तो फिर ज्ञान कैसे मिलेगा? गुरु बिना तो ज्ञान संभव नहीं। गुरु पद तो ईश्वर से भी महान होता है। इसलिए गुरु की आज्ञा मानने में ही भलाई है।'

इस प्रकार गुरु की आज्ञा मानकर दयानन्द ने अपने समस्त ग्रंथ यमुना मैया में प्रवाहित कर दिए।

और इस प्रकार स्वामी दयानन्द गुरु के चरणों में बैठकर आर्ष ज्ञान प्राप्त करने लगे। पास ही एक मंदिर की एक तंग कुठरिया में उन्होंने आवास स्थल बनाया और मंदिर में चढ़ाए जाने वाले चने-गुड़ को खाकर पेट की भूख की आग शांत कर लिया करते थे। अंत में एक धनी आदमी को उन पर दया आ गई, तो उन्होंने उसके भोजन का प्रबन्ध कर दिया।

गुरु साथ में और भी शिष्यों को पढ़ाते थे। वे कहते थे बच्चों हमारी राष्ट्रीय संस्कृति वैदिक है, जो वेदों के आधार पर सदियों से अपना जीवन व्यतीत करती आई है। वेद संसार के सबसे पुराने ग्रंथ हैं, इसलिए हमें गर्व होना चाहिए कि हमारी संस्कृति दुनिया में सबसे प्राचीन है और गौरवशाली है। वेद प्राचीन भारत में हमारे प्राचीनतम और आधारभूत धर्मग्रन्थ हैं। भारतीय संस्कृति में सनातन धर्म के मूल और सब से प्राचीन ग्रन्थ हैं, जिन्हें ईश्वर की वाणी समझा जाता है। वेदों को अपौरुषेय (जिसे कोई व्यक्ति न कर सकता हो, यानि ईश्वर कृत) माना जाता है तथा ब्रह्मा

को इनका रचयिता माना जाता है। इन्हें श्रुति भी कहते हैं जिसका अर्थ है सुना हुआ। अन्य हिन्दू ग्रंथों को स्मृति कहते हैं यानी मनुष्यों की बुद्धि या स्मृति पर आधारित। ये विश्व के उन प्राचीनतम धार्मिक ग्रंथों में हैं जिनके मन्त्र आज भी इस्तेमाल किये जाते हैं। वेद शब्द संस्कृत भाषा के विद् धातु से बना है, इस तरह वेद का शाब्दिक अर्थ विदित यानि ज्ञान के ग्रंथ है। आज चतुर्वेदों के रूप में ज्ञात इन ग्रंथों का विवरण इस प्रकार है :

ऋग्वेद : ऋग्वेद को चारों वेदों में सबसे प्राचीन माना जाता है। इसको दो प्रकार से बाँटा गया है। प्रथम प्रकार में इसे 10 मण्डलों में विभाजित किया गया है। मण्डलों को सूक्तों में, सूक्त में कुछ ऋचाएं होती हैं। कुल ऋचाएँ 1052 हैं। दूसरे प्रकार से ऋग्वेद में 64 अध्याय हैं। आठ-आठ अध्यायों को मिलाकर एक अष्टक बनाया गया है। ऐसे कुल आठ अष्टक हैं। फिर प्रत्येक अध्याय को वर्गों में विभाजित किया गया है। वर्गों की संख्या भिन्न-भिन्न अध्यायों में भिन्न-भिन्न ही है। कुल वर्ग संख्या 2024 है। प्रत्येक वर्ग में कुछ मंत्र होते हैं। सृष्टि के अनेक रहस्यों का इनमें उद्घाटन किया गया है। पहले इसकी 21 शाखाएं थीं परन्तु वर्तमान में इसकी शाकल शाखा का ही प्रचार है।

यजुर्वेद : इसमें गद्य और पद्य दोनों ही हैं। इसमें यज्ञ कर्म की प्रधानता है। प्राचीन काल में इसकी 101 शाखाएँ थीं परन्तु वर्तमान में केवल पांच शाखाएं हैं : काठक, कपिष्ठल, मैत्रायणी, तैत्तिरीय, वाजसनेयी। इस वेद के दो भेद हैं : कृष्ण यजुर्वेद और शुक्ल यजुर्वेद। कृष्ण यजुर्वेद का संकलन महर्षि वेद व्यास ने किया है। इसका दूसरा नाम तैत्तिरीय संहिता भी है। इसमें मंत्र और ब्राह्मण भाग मिश्रित हैं। शुक्ल यजुर्वेद : इसे सूर्य ने याज्ञवल्क्य को उपदेश के रूप में दिया था। इसमें 15 शाखाएं थीं परन्तु वर्तमान में माध्यन्दिन को जिसे वाजसनेयी भी कहते हैं प्राप्त हैं। इसमें 40 अध्याय, 303 अनुवाक एवं 1975 मंत्र हैं। अन्तिम चालीसवाँ अध्याय ईशावास्योपनिषद है।

सामवेद : यह गेय ग्रन्थ है। इसमें गान विद्या का भण्डार है, यह भारतीय संगीत का मूल है। ऋचाओं के गायन को ही साम कहते हैं। इसकी 1001 शाखाएं थीं। परन्तु आजकल तीन ही प्रचलित हैं : कोथुमीय, जैमिनीय और राणायनीय। इसको पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक में बांटा गया है। पूर्वार्चिक में चार काण्ड हैं : आग्नेय काण्ड, ऐन्द्र काण्ड, पवमान काण्ड और आरण्य काण्ड। चारों काण्डों में कुल 640 मंत्र हैं। फिर महानाम्न्यार्चिक के 10 मंत्र हैं। इस प्रकार पूर्वार्चिक में कुल 650 मंत्र हैं। छः प्रपाठक हैं। उत्तरार्चिक को 21 अध्यायों में बांटा गया। नौ प्रपाठक हैं। इसमें कुल 1225 मंत्र हैं। इस प्रकार सामवेद में कुल 1875 मंत्र हैं। इसमें अधिकतर मंत्र ऋग्वेद से लिए गए हैं। इसे उपासना का प्रवर्तक भी कहा जा सकता है। हवन और यज्ञ में भी इसके कई मंत्र उपयोग में लाए जाते हैं।

अथर्ववेद : इसमें गणित, विज्ञान, आयुर्वेद, समाज शास्त्र, कृषि विज्ञान, आदि अनेक विषय वर्णित हैं। कुछ लोग इसमें मंत्र-तंत्र भी खोजते हैं। यह वेद जहां ब्रह्म ज्ञान का उपदेश करता है, वहीं मोक्ष का उपाय भी बताता है। इसे ब्रह्म वेद भी कहते हैं। इसमें मुख्य रूप में अथर्वण और आंगिरस ऋषियों के मंत्र होने के कारण अथर्व आंगिरस भी कहते हैं। यह 20 काण्डों में विभक्त है। प्रत्येक काण्ड में कई-कई सूत्र हैं और सूत्रों में मंत्र हैं। इस वेद में कुल 5977 मंत्र हैं। इसकी आजकल दो शाखाएं शौणिक एवं पिप्पलाद ही उपलब्ध हैं। अथर्ववेद का विद्वान् चारों वेदों का ज्ञाता होता है। यज्ञ में ऋग्वेद का होता देवों का आह्वान करता है, सामवेद का उद्गाता सामगान करता है, यजुर्वेद का अध्वर्यु देव : कोटीकर्म का वितान करता है तथा अथर्ववेद का ब्रह्म पूरे यज्ञ कर्म पर नियंत्रण रखता है।

वेद के अंग, उपांग एवं उपवेद : वेदों के सर्वांगीण अनुशीलन के लिए शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष : इन 6 अंगों के ग्रन्थ हैं। प्रतिपदसूत्र, अनुपद, छन्दोभाषा (प्रातिशाख्य), धर्मशास्त्र, न्याय तथा वैशेषिक- ये 6 उपांग ग्रन्थ भी उपलब्ध है। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद

तथा स्थापत्यवेद : ये क्रमशः चारों वेदों के उपवेद कात्यायन ने बतलाए हैं।

वेद-भाष्यकार : प्रचान काल में व्यास, जैमिनी, पतंजलि आदि मुनियों को वेदों का अच्छा ज्ञान था। व्यास ऋषि ने गीता में कई बार वेदों का जिक्र किया है। कई बार कृष्ण, अर्जुन से ये कहते हैं कि वेदों की अलंकारमयी भाषा के बदले उनके वचन आसान लगेंगे।

विदेशी प्रयास : सत्रहवीं सदी में मुगल बादशाह औरंगजेब के भाई दारा शिकोह ने कुछ उपनिषदों का फारसी में अनुवाद किया जो पहले फ्रांसिसी और बाद में अन्य भाषाओं में अनूदित हुईं। यूरोप में इसके बाद वैदिक और संस्कृत साहित्य की ओर ध्यान गया। मैक्समूलर जैसे यूरोपीय विद्वान ने भी संस्कृत और वैदिक साहित्य पर बहुत अध्ययन किया है। लेकिन यूरोप के विद्वानों का ध्यान हिन्द आर्य भाषा परिवार के सिद्धांत को बनाने और उसको सिद्ध करने में ही लगी हुई है। शब्दों की समानता को लेकर बने इस सिद्धांत में ऐतिहासिक तथ्य और काल निर्धारण को तोड़-मरोड़ करना ही पड़ता है। इस कारण से वेदों की रचना का समय 1800-1000 इस्वी ईसा पूर्व माना जाता है जो संस्कृत साहित्य और हिन्दू सिद्धांतों पर खरा नहीं उतरता। लेकिन आर्य जातियों के प्रयाण के सिद्धांत के तहत और भाषागत दृष्टि से यही काल इन ग्रंथों की रचना का मान लिया जाता है। अनेक विदेशी विद्वानों ने भारतीय संस्कृति से प्रभावित होकर अपने परिधान तक भारतीय कर लिए हैं और धोती-कुर्ता तक पहनने लगे हैं।

एक दिन की बात है, दयानंद ने गुरु जी से पूछा, ''गुरुदेव मैंने एक बात सुनी है।''

''क्या बात सुनी है तुमने?''

''यही कि हमारा देश भारत कभी सोने की चिड़िया था।''

''तुमने सही ही सुना है।''

''लेकिन अब क्यों नहीं, तब क्यों था? क्या इस पर प्रकाश डालेंगे।''

"अच्छी बात है।" कहकर वे भारत के अतीत का भान कराने लगे थे। वैदिक संस्कृति के कारण भारत कभी सोने की चिड़िया के नाम से पुकारा जाता था। यह इसलिए सोने की चिड़िया नहीं कहा जाता था कि यहाँ पर सोने की अपार खानें थीं, वरन् इसलिए कहा जाता था कि ज्ञान और विज्ञान में अपार उन्नति करके भारतीय इस मृत्यु लोक पर ही स्वर्ग की अनुभूति कर रहे थे। लेकिन प्रश्न पूछा जाता है कि प्राचीन भारत ज्ञान-विज्ञान के कारण स्वर्ग या स्वर्ण भूमि कहा जाता था, इस का क्या प्रमाण है? तो क्रांतिकारी आंदोलन के गौरवशाली इतिहास के प्रारम्भ में हम भारत के परम वैभव की ही चर्चा करेंगे।

भारत में ही मनुष्य ने प्रथम विज्ञान और कला का अरुणोदय देखा। जब यहाँ सभ्यता एवं संस्कृति अपने शिखर पर पहुँच चुकी थी, तो यूरोप वाले नितांत जंगली थे। डफ साहब का कथन है कि आर्यों का विज्ञान इतना विस्तृत है कि यूरोपीय विज्ञान के सब अंग वहाँ मिलते हैं।

सृष्टि से लेकर पाँच सहस्र वर्ष पूर्व तक आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में एकमात्र सर्वोपरि राज्य था। आर्यावर्त से भिन्न देश म्लेच्छ या दस्यु देश थे। संसार को आज ही की तरह सात महाद्वीपों में बाँटा गया था, जिसे आज एशिया कहते हैं, वैदिक काल में उसका नाम जम्बूद्वीप था। भारत इसी का एक वर्ष है, जब यहाँ पर तोप व वायुयान थे, तब यूरोप में पाषाण युग ही चल रहा था। वेदों में सब पदार्थ एवं सब विद्याओं का वर्णन मिल सकता है, लेकिन यह गहन अनुसंधानों के बाद ही संभव है। आधुनिक युग में यदि कोई विद्वान अपने अविद्यांधकार को हटाकर ज्ञान को प्रकाशित कर देता है, तो वह समझता है कि मैंने एक नया आविष्कार किया है। भोले-भाले अन्य मनुष्य भी समझने लगते हैं कि इस विद्वान ने ही नई खोज की है और इससे पहले इस बात का किसी को पता ही नहीं था। यह उनकी बड़ी भूल होती है। वैदिक युग में सब ज्ञान प्रकाशित था, धीरे-धीरे अज्ञान अंधकार से विज्ञान का वह प्रकाश लुप्त हो गया। इतनी बात तो अवश्य है कि उस विद्वान ने इस युग में

ज्ञानांधकार हटाकर पुर्नाविष्कार किया, अपनी योग्यता से नई बात का पता लगाया, पर यह कहना सर्वथा ही अनुचित है कि इससे पहले कभी किसी को इस बात का ज्ञान था ही नहीं।

ईसाई पादरी मैक्समूलर (मोक्षमूलर) ने एक स्थान पर लिखा है कि मैं आपको पुनः स्मरण कराता हूँ कि वेद में अधिकांश बचकानी और मूर्खों वाली बातें हैं, यद्यपि ऐसे स्थल बहुत थोड़े हैं जो दुराचार प्रतिपादक हों। बहुत से मंत्र सर्वथा फीके और निरर्थक हैं। पादरियों द्वारा आर्यों को गंवार, ग्वाला तथा घुमक्कड़ बताया गया। दरअसल मैक्समूलर यदि वेदों में विज्ञान सिद्ध कर देते तो यह बाइबल के विरुद्ध होता और बाइबल के विरुद्ध बोलने का परिणाम होता सजा-ए-मौत। इसलिए उन्होंने सत्य को दबा दिया, लेकिन सत्य भला कभी दबाया जा सकता है? कदापित नहीं। रेवरेन्ड मौरिस फिलिप नामक ईसाई पादरी ने मैक्समूलर के बयानों पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा है कि हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वैदिक आर्यों के ईश्वरादि विषयक पवित्रता और उच्चतर विचार एक प्रारंभिक ईश्वरीय ज्ञान के परिणाम थे।

हमारे पूर्वज आर्य कहे जाते थे यानी कि श्रेष्ठ और आर्य उच्चकोटि के विद्वान थे, इसको हम इस प्रकार सिद्ध कर सकते हैं :

1. आर्य साहित्य में विज्ञान शब्द का अर्थ साइन्स के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जैसे 'एतदुविज्ञानम्' शतपथ 3-3-4

'इति विज्ञायेत यास्कीय निरुक्त एवं कल्पसूत्र

संस्कृत व्याकरण में विद् नामक चार धातुएँ हैं, जिनसे 'वेद' शब्द बन सकता है विद् सत्तायाम् (विद्यते), विद् ज्ञाने (वेत्ति), विद् विचारणे (वेविन्ते) और विद्लृ लाभे (विन्दति)। इन चारों धातुओं से बनने वाले शब्द आश्चर्यचकित करने वाले हैं। मनुष्य जाति के अस्तित्व में आते ही (विद् सत्तायाम), ज्ञान प्राप्ति के लिए (विद् ज्ञाने), विचारपूर्वक (विद् विचारणे), संसार के लाभ के लिए (विद्लृ लाभे) अपनी जो महान विरासत परमात्मा ने छोड़ी है, उसी का नाम वेद है। 'वेद' शब्द लिट् लकार में

नहीं बनता, केवल लट् लकार में ही बनता है, जो वर्तमान काल का द्योतक है। वेद भूतकाल से मुक्त हैं अर्थात् वह सतत् प्रत्यक्ष है। अतः जब वेद नहीं रहेंगे तो सृष्टि भी नहीं रहेगी। वैदिक वानप्रस्थियों और ऋषियों ने जंगलों के बीच निरोग जलवायु में वेदों पर अनुसंधान करके क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त किया है, क्रमबद्ध ज्ञान ही विज्ञान कहा गया और आर्यो का यह विज्ञान मानव कल्याण के लिए था, उनकी शिक्षाएँ नैतिकता व नम्रता के लिए हैं, क्योंकि ऋषियों का व्यवहार स्वच्छ व निष्काम था।

2. पृथ्वी के आकार का ज्ञान पुराणों में इंगित पद्माकार, अंडाकार से होता है। शतपथ में परिमण्डल रूप भी पृथ्वी की गोलाकार आकृति का द्योतक है। ऋग्वेदानुसार भी पृथ्वी गोल है तथा सूर्य के आकर्षण पर ठहरी है।

3. यजुर्वेद के अनुसार पृथ्वी जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमती जाती है। भला आर्यो को गंवार कैसे कहा जा सकता है? गृह परिचालन सिद्धांत तो महाज्ञानी ही लिख सकते हैं।

4. वेदों में सूर्य को वृघ्न कहा गया है, अर्थात् पृथ्वी से सैकड़ों गुणा बड़ा व करोड़ों कोस दूर। क्या घुमन्तु जाति ऐसा अनुमान लगा सकती थी?

5. अथर्ववेद में भूत-प्रेत, ताबीज बनाने का विवरण कहीं भी नहीं, बल्कि कर्मबद्ध विज्ञान ही है, जैसे 'जिस तरह चन्द्रलोक सूर्य से प्रकाशित होता है, उसी तरह पृथ्वी भी सूर्य से प्रकाशित होती है।

6. सूर्य की सात किरणों का ज्ञान संसार में सबसे पहले आर्यो ने ही ज्ञात किया। आर्यो ने ही विश्व को बताया कि सूर्य की सात किरणें दिन को उत्पन्न करती हैं। इतना ही नहीं आर्यों ने सूर्य के अन्दर सर्वप्रथम काले दागों को भी देखा था।

7. आर्यो को सूर्य-चन्द्र ग्रहण के वैज्ञानिक कारणों का ज्ञान था तथा पृथ्वी की परिधि का भी। भास्कराचार्य ने इस पृथ्वी के गोल होने और उसमें आकर्षण (चुम्बकीय) शक्ति होने के सिद्धांतों का प्रतिपादन वेदाध्ययन

के आधार पर ही किया, क्योंकि वेद सब सत्य विद्याओं का सार है। उन्होंने लिखा कि गोले की परिधि का 100वाँ भाग एक सीधी रेखा प्रतीत होता है, हमारी पृथ्वी भी एक बड़ा गोला है। मनुष्य को उसकी परिधि का बहुत ही छोटा भाग दीखता है। इसलिए यह चपटी दिखती है। वेदों के आकर्षण सिद्धांत का भावार्थ करते हुए न्यूटन से कई शताब्दियों पहले भास्कराचार्य ने थ्यौरी ऑफ ग्रेविटेशन इतना उत्तमता से लिखा कि इसे देखकर आश्चर्य होता है। उन्होंने लिखा कि पृथ्वी अपनी आकर्षण शक्ति के जोर से सब चीजों को अपनी ओर खींचती है। इसलिए सभी पदार्थ उस पर गिरते हुए नजर आते हैं। इन्हीं सिद्धांतों को पढ़कर फ्रांस निवासी जैकालियट ने अपनी पुस्तक 'द बाइबल इन इंडिया' में लिखा है कि सब विद्या भलाइयों का भंडार आर्यावर्त है। आर्यावर्त से ज्ञान-विज्ञान को अरब वालों ने लिया तथा अरब से ही यूरोप पहुँचा। एक साक्ष्य यह भी है कि खलीफा हारुनशीद और अलमामू ने भारतीय ज्योतिषियों को अरब बुलाकर उनके ग्रंथों (वेदों, पुरणों व उपनिषदों) का अरबी में अनुवाद करवाया।

आर्य ग्रीकों और अरबों के गुरु थे। आर्यभट्ट के ग्रंथों का अनुवाद कर धर्मबहर नाम रखा गया। अलबेरूनी लिखता है कि अंकगणित शास्त्र में हिन्दू लोग संसार की सब जातियों से बढ़कर हैं। मैंने अनेक भाषाओं के अंकों के नामों को सीखा, परन्तु मैंने किसी भी जाति में हजार से आगे के लिए कोई नाम नहीं पाया। परन्तु हिन्दू (आर्य) लोगों में 18 अंक तक की संख्याओं के नाम हैं और वे उसे परार्ध कहते हैं। यजुर्वेद में निम्नलिखित संख्या में ईंटों का हवन कुंड बनाने की शक्ति देने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई है

एक	1
दश	10
शत	100
सहस्र	1000

अयुत	10000
नियुत	100000
प्रयुतम	10000000
अर्वुद	100000000
न्यर्वुद	1000000000
समुद्र	100000000000
मध्य	10000000000000
अन्त	1000000000000000
परार्ध	100000000000000000

इतना ही नहीं, वेदों में पहाड़ों का वर्णन भी हैं, वर्गमूल, मित्र, रेखागणित आदि का विस्तृत वर्णन यजुर्वेद में है।

8. आर्यों का साहित्य उच्चकोटि का है। किरातार्जुनीय में तो भारवि ने शब्द वैचित्र्य के अद्‌भुत और उत्तम उदाहरण द्वारा संसार-भर को आर्य साहित्य से अवगत करा दिया। एक श्लोक में न के सिवाय और कोई अक्षर नहीं सिर्फ अन्त में त है' यथा

न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेनानुन्ननुनुत्॥

किरातार्जुनीय 15-14

आठवीं सदी में कविराज ने 'राघव-पांडवीय' ग्रंथ रचा। जिसके प्रत्येक श्लोक के दो अर्थ हैं, एक रामायण की कथा बतलाता है दूसरा महाभारत की। उदाहरण स्वरूप नीचे लिखे पद्य का अवलोकन कीजिए

नृपेण कन्यां जनकेन दित्सितामयोनिजांलम्भयितुं स्वयंवरो।
द्विजप्रकर्षेण स धर्मनन्दनः सहानुजस्तां भुवमप्यनीयत॥

इसी प्रकार वाल्मीकि एवं कालिदास की प्रसिद्धि से संसार में भला कौन अगवत नहीं है?

9. आर्यों ने ग्रहण देखने के लिए तुरीय यंत्र (दूरबीन) का आविष्कार किया था। शिल्प संहिता में लिखा है कि पहले मिट्टी को गलाकर काँच

तैयार करें, फिर उसको साफ करके स्वच्छ काँच (लैन्स बनाकर) को बाँस या धातु की नली में (आदि, मध्य और अन्त) में लगाकर फिर ग्रहणादि देखें। वेद में भी लिखा है कि चन्द्र की छाया से जब सूर्य ग्रहण हो तब तुरीययंत्र से आँख देखती है।

10. वेदों में ध्रुव प्रदेश में होने वाले छह-छह मास के दिन-रात का भी वर्णन है। ध्रुवों में छह मास का दिन व छह मास की रात्रि मालूम करना ज्योतिष और भूगोल के महान सूक्ष्म ज्ञान पर ही अवलंबित है। पृथ्वी पर ऐसी कोई जगह न बची थी, जिससे आर्य अपरिचित हों। तभी तो आर्य साहित्य में लिखा है कि जिस समय लंका में सूर्य उदय होता है, उस समय यमकोटि नामक नगर में दोपहर, नीचे सिद्धपुरी में अस्तकाल और रोमक में दोपहर रात्रि रहती है। अतः रोबर्ट को उत्तरी ध्रुव का खोजकर्ता कहना गलत है।

11. ऐतरेय और गोपथ ब्राह्मण में लिखा है कि न सूर्य कभी अस्त होता है, न उदय होता है। वह सदैव बना रहता है, परन्तु जब पृथ्वी से छिप जाता है तब रात्रि हो जाती है और जब पृथ्वी आड़ से हट जाती है, तब दिन हो जाता है। ऐसी दशा में कौन कह सकता है कि खगोलिक भूगोल का सूक्ष्म ज्ञान आर्यो ने आविष्कृत नहीं किया।

12. वेद में लिखा है कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है और उसी सूर्य के आकर्षण के कारण अपने मार्ग से भटक नहीं सकती सूर्य की परिक्रमा पृथ्वी कितने दिनों में करती है, इसका उत्तर वेद इस प्रकार देता है:

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उतच्चिकेत।
तस्मिन् त्साकं त्रिशता न शंकवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलाशः॥

ऋग्वेद 1-164-48

भावार्थ : (चक्रम्) यहाँ वर्ष ही चक्र है, क्योंकि यह रथ के पहिया के समान क्रमणः अर्थात् पुनः-पुनः घूमता रहता है। उस चक्र में (द्वादशप्रधयः) जैसे चक्र में 12 छोटी-छोटी अरे प्रधि = कीलें हैं। वैसे साल में बारह

मास हैं। (त्रीणिनभ्यानी) इसके (पृथ्वी के) परिक्रमण के दौरान कोई भाग सूर्य के नजदीक आने-दूर जाने से तीन ऋतुएँ होती हैं। (क:ड़ततूचिकेत) इस तत्व को कौन जानता है। (तस्मिनूसाकमूशंकवः) उस वर्ष में कीलों सी (त्रिशताषष्ठिः) 300 और 60 दिन (अर्पिता) स्थापित हैं। (नृचलाचलाशः) वे 360 दिन रूप कीलें कभी विचलित होने वाली नहीं हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि एक वर्ष में 360 दिन होते हैं।

13. सेन्ट्रीफ्यूगल पम्प का आविष्कार भी आर्यों ने किया था। कणाद मुनि कहते हैं कि नली से वायु निकाल देने पर जल ऊपर चढ़ता है। पानी निकालते जाइए वायु ऊपर चढ़ता जाएगा।

14. आर्यों के पास कम्पास भी था। कम्पास का सिद्धांत चुम्बक की सुई पर अवलंबित है। वैशेषिक में कणाद मुनि लिखते हैं कि मणिगमनं सूच्यभिसर्पणमदृष्टकारणम् अर्थात् चुम्बक की सुई की ओर लोहे के दौड़ने का कारण अदृष्ट है। यह लोह चुम्बक सुई के अस्तित्व का प्राचीनतम् प्रमाण है। इसी तरह अति प्राचीन हस्तलिखित शिल्पसंहिता जो गुजरात के अणहिलपुर के जैन पुस्तकालय में है। उसमें ध्रुव मत्स्य यंत्र बनाने की विधि स्पष्ट रूप से लिखी मिलती है, उसी शिल्पसंहिता में थर्मामीटर व बैरोमीटर बनाने की विधि लिखी हुई है। यहाँ लिखा है कि पारा, सूत और जल के योग से यह यंत्र बनता है। शिल्प संहिताकार कहते हैं कि इस यंत्र से ग्रीष्म आदि ऋतुओं का निर्णय होता है।

15. आर्यों ने समय जानने के लिए धूपघड़ी, जलघड़ी और बालूघड़ी का निर्माण भी कर लिया था। ज्योतिष ग्रंथों में लिखा है कि तोययंत्रकपाल धैर्मयूर नर वानरैः। ससूत्ररे वुगर्भैश्च सम्यकालं प्रसाधयेत् अर्थात् जलयंत्र से समय जाना जाता है अथवा मयूर नर और मानव आकृति के यंत्र बनाकर उनमें बालू भरने और एक और का रेणु सूत्र दूसरे में गिरने से भी समय जानने का यंत्र बन जाता है।

16. आर्यों ने स्वयंवह नामक वह यंत्र बना लिया था, जो गर्मी या सर्दी पाकर अमुक वेग से अपने आप चलने लगता था, जिसमें पारा भरा

जाता था। जो तूफान या मानसून जानने का सर्वोत्तम यंत्र था।

17. ज्वार भाटा की बात आर्यों को ज्ञात थी। विष्णु पुराण में लिखा है कि यथार्थ में ज्वार भाटे से समुद्र का जल कम और अधिक नहीं हो जाता। प्रत्युत अग्नि में थाली पर जल रखने से जिस प्रकार वह उमड़ पड़ता है उसी प्रकार चन्द्रमा के आकर्षण से ज्वार भाटा होता है। अतः विलियम वेवल ज्वार भाटा सिद्धांत के जनक नहीं हैं।

18. बीजापुर के संस्कृत पुस्तकालय में सुरक्षित संस्कृत की एक प्राचीन पुस्तक में वायरलैस बनाने का वर्णन है, तभी तो शुक्रनीति में लिखा है कि राजा एक दिन में दस कोस तक की बात जाने। उपरोक्त पुस्तक में ऐसे मसाले बनाने की विधि का वर्णन भी है, जिसके उपयोग से मृत शरीर हजारों वर्ष अविकृत अवस्था में रह सकता है।

19. पुराने जमाने में ऐसा मंत्र भी बनाया जाता था, जो आदमी की भाँति बोलता था। विक्रमादित्य के सिंहासन की पुतलियाँ बराबर बोलती थीं। रावण ने एक कृत्रिम सीता बनाई थी, जो राम का नाम लेकर रोती थी। अतः रोबोट भी पुराने जमाने में बनाए जाते थे।

20. आधुनिक विज्ञान बताता है कि सूर्य आकाश गंगा के अक्षीय परिक्रमा करता है। यह बात यजुर्वेद में इस प्रकार लिखी है सूर्य वर्षा आदि का कर्ता प्रकाशमान तेजोमय सब प्राणियों में अमृत रूप वृष्टि (किरणें) द्वारा प्रवेश (विटामिन डी आदि) करा और मूर्तिमान सब द्रव्यों को दिखाता हुआ सब लोकों के साथ आकर्षण गुण से अपनी परिधि में घूमता है, किन्तु किसी लोक (पृथ्वी आदि दस ग्रह) के चारों ओर नहीं घूमता।

21. कहते हैं कि वेदों में भूत-प्रेतों की कथाएँ हैं? लेकिन यह झूठा आरोप है, क्योंकि एक स्थान पर लिखा है कि जब गुरु का प्राणांत हो, तब मृतक शरीर जिसका नाम प्रेत है, उसका दाह करने वाला शिष्य प्रेतहार अर्थात् मृतक को उठाने वालों के साथ दसवें दिन शुद्ध होता है। दाह होने के बाद उसका नाम भूत है। अतः जो बीत गया उसी का नाम भूत है।

22. किसी भी वैदिक साहित्य में पशुबलि या नरबलि का विधान नहीं है, वेदानुसार अश्वमेध यज्ञ उसे कहते हैं जो राजा धर्म से पालन करे, न्याय के साथ राष्ट्र में स्थिरता कायम करे। विद्या आदि प्रदान करना और जनकल्याण के लिए होम करना ही अश्वमेध है। कृषि कर्म करना, इंद्रियों, पृथ्वी आदि को पवित्र रखना गोमेध यज्ञ कहलाता है। यज्ञ तो हिंसा रहित होता है।

23. एक्सबायोलोजी अभिधारणा के बारे में वेद कहता है कि जिस प्रकार सूर्य, चन्द्र आदि इस लोक में हैं, अन्य लोक में भी हैं। यह आर्यो को भली-भाँति विदित है कि अर्जुन महाभारत काल में मंगल ग्रह पर गया था। अन्य लोक जहाँ पर जीवन है, जलवायु व वातावरणानुसार प्राणियों के संग, रूप व भाषा में अन्तर हो सकता है।

24. वेद का प्रत्येक शब्द योगिक है। जैसे कुरान में अकबर का नाम होने से कुरान को मुगल बादशाह अकबर के बाद का नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार कृष्ण, अर्जुन, भारद्वाज आदि नाम वेदों में होने से उनको वेद से पहले नहीं माना जा सकता। वेदों के शब्द पहले के और मनुष्यों के बाद के हैं। योगिक अर्थ की एक झलक इस प्रकार है

भारद्वाज=मन, अर्जुन=चन्द्रमा, कृष्ण=रात्रि।

25. वैदिक साहित्य में श्रद्धा से किए गए काम, सेवा या श्रद्धापूर्वक दान का नाम श्राद्ध लिखा है, मुर्दों का नहीं। माता-पिता आदि देवगण ही जीवित पितर हैं उनकी सेवा ही श्राद्ध व तर्पण हैं। मरे हुए का श्राद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि व्यक्ति मरकर नया जन्म ले लेता है।

26. आर्यों की अभिधारणा थी कि परमात्मा एक है जो इस जग के कण-कण में व्याप्त है। जिसे विद्वान लोग अनेक गुणवाचक नामों से पुकारते हैं। इसलिए उसकी कोई मूर्ति नहीं।

27. भारतीय संस्कृति के विकास में वैदिक आर्यों की विशेष देने सहिष्णुता और सामंजस्य की भावना, ज्ञान-विज्ञान का विकास, तपोवन पद्धति, वर्णव्यवस्था और नारियों की प्रतिष्ठा थी।

28. पुत्रियों का उपनयन संस्कार भी होता था, वे ब्रह्मचर्यवर्ती भी होती थीं। उन्हें यज्ञ करने का अधिकार था। पाइथागोरस से दो हजार वर्ष पूर्व बौधायन ने अपने सुलभ सूत्र में कर दिया था। पाइथागोरस ने वह प्रमेय भारत में पढ़ी थी। गाल्टन साहब का कथन है कि आजकल के यूरोपीय लोग ज्ञान के मामले में यूनानियों के सामने हबशियों के समान हैं, तो प्रश्न यह है कि भारतीयों के सामने यूनानियों का दर्जा क्या था? डॉ. ऑफील्ड लिखते कि 'भारतवर्ष' में शिक्षा प्राप्त करने के लिए पाइथागोरस, अनकसागोरस, पिरहो और अन्य बहुत से महाशय आए जो बाद में यूनान में प्रसिद्ध वैज्ञानिक बनें।

29. चिकित्सा शास्त्र के जनक आर्य ही हैं। वर्तमान यूरोपीय चिकित्सा शास्त्र का आधार भी आयुर्वेद है। लार्ड एन्पिथल ने एक भाषण में कहा था कि मुझे यह निश्चय है कि आयुर्वेद भारत से अरब में और वहाँ से यूरोप में गया। भोज प्रबन्ध में बेहोश कर शल्यकर्म करने का उल्लेख है। ऋग्वेद में असली बाहु कट जाने पर कृत्रिम बाहु लगाते हुए देव का वर्णन आया है। ऋग्वेद में कटा हुआ सिर भी शल्य चिकित्सा से जोड़ने का विधान है। प्राचीन काल में मृत व्यक्ति की आँखें निकालकर चक्षुहीन को लगाई जाती थी। शरीर की टूटी-फूटी कोशिकाओं की मरम्मत करके युवा अवस्था को काफी समय तक बरकरार रखा जाता था। च्यवन ऋषि को तो वृद्धावस्था से युवावस्था प्राप्त हो गई थी।

च्यवनप्राश क्या आयुवर्धक (रीजनरेटिव) औषधि आज नहीं है? ऋग्वेद में मानव शरीर का पंचभूतों से बनने का उल्लेख एवं एक हजार औषधियों का वर्णन है। ऋषि-मुनियों के अनुसार, अथर्ववेद को वेद में भेषजा कहा गया है इससे बड़ी साक्षी वेदों में औषधियों के वर्णन की और क्या होगी? अथर्ववेद में रोगों के नाम एवं उनके लक्षणों तक का ही नहीं, बल्कि मनुष्य की शरीर की 206 हड्डियों का वर्णन तक है। वेदों में जर्म थ्योरी पाई जाती है। प्रो. मैकडानल ने लिखा है कि ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में अदृष्ट शब्द एक प्रकार के कृमियों के लिए आया है। वेद मंत्रों में सूर्य को ऐसे

कृमियों का नाशक कहा गया है, अथर्ववेद में तो दृष्ट तथा अदृष्ट कृमियों (भूत-प्रेतों) का विस्तृत वर्णन है। वात्स्यायन प्रणीत कामसूत्र में रज व वीर्य का वैज्ञानिक विधि से विस्तृत वर्णन है। अथर्ववेद में 15 प्रकार की शल्य चिकित्सा का वर्णन है।

30. प्राचीन आर्य कृत्रिम दांतों का बनाना और लगाना तथा कृत्रिम नाक बनाकर सीना भी जानते थे। दांत उखाड़ने के लिए एनीपद शस्त्र का वर्णन मिलता है। मोतियाबिन्द (कैटेरेक्ट) के निकालने के लिए भी शस्त्र था। बाग्भट्ट ने शल्यकर्मों के यंत्रों की संख्या 115 लिखी है। प्राचीन काल में आर्य सूक्ष्म ऑपरेशन करते थे। कटी हुई नाक को जोड़ने की विधि यूरोपियनों ने भारतीयों से सीखी।

31. वनस्पति शास्त्र के जनक भी आर्य ही हैं। हंसदेव का मृगपक्षी शास्त्र वनस्पति विज्ञान का प्रामाणिक ग्रंथ है। बागों में कृत्रिम झरने लगाए जाते थे। समरांगणसूत्रधार में तो लिफ्ट का भी जिक्र है। वेद कहता है कि लता तथा पेड़ों के पत्ते दोनों वर्णो (सूर्य का लाल व भूमि का रस कृष्ण वर्ण) के मेल से हरे बनते हैं।

32. प्राचीन काल में दरिद्रों के घर में भी विमान थे। उपरिचर नामक राजा सदा हवा में ही फिरा करता था, पहले के लोगों को विमान रचने की विद्या भली प्रकार विदित थी। महाराज भोज के समय 'महाविहङ्ग' नामक लकड़ी से वायुयान बनाया जाता था, जिसमें रस यंत्र (ईंधन पदार्थ) तथा आग से भरा ज्वलनाधार (इंजन का भाग) होता था, जो पारे की गति से दौड़ता था। अथर्ववेद में वायुमार्ग से यात्रा करने का वर्णन है। ऋग्वेद में वायुयान के बारे में कहा गया है कि जो आकाश में पक्षियों के उड़ने की स्थिति को जानता है, वह आकाश की नाव विमान को जानता है। गयाचिंतामणि ग्रंथ में मयूर की आकृति के विमान का वर्णन है। शाल्व का विमान भूमि, आकाश, जल, पहाड़ पर आसानी से चलता था। वाल्मीकि रामायण में पुष्पक विमान का वर्णन है। विमानों के कारीगर बौद्धकाल तक मौजूद थे। बौधिराज कुमार के महल के कारावास से एक कारीगर

विमान द्वारा भाग गया था। यजुर्वेद में विमानों के अंगों का वर्णन हैं।

विमानों से संबंध रखने वाली एक प्राचीन पुस्तक अंशुबोधिनी है, इसके लेखक भारद्वाज ऋषि हैं। इस पुस्तक के विमान अधिकरण में आए हुए भारद्वाज ऋषि के 'शक्त्युद्मोघष्टौ' सूत्र पर बौधायन ऋषि की वृत्ति इस प्रकार है

शकत्युद्गमो भूतवाहो धूमयानश्शिखोद्गम।
अंशुवाहस्तारामुखो मणिवाहो मरूत्सखः॥
इत्यष्टकाधि करणे वर्णाण्युक्तानि शास्त्रतः॥

इन श्लोकों में विमान की रचना और उनकी आकाश संचारी गति के आठ विभाग इस प्रकार है 'शक्त्युद्गम' बिजली से चार्ज करके चलने वाले, 'भूतवाह' अग्नि, जल और वायु से चलने वाले, 'तारामुख' उल्कारस (चुम्बक से चलने वाला), 'मणिवाह' सूर्यकांत, चन्द्रकांत आदि मणियों से चलने वाला और 'मरूत्सखा' केवल वायु से चलने वाला।

33. तोप (शतघ्नी), बन्दूक (भुशुण्ड़ी) तथा बारूद का आविष्कार भी आर्यो ने किया। इनके बनाने की विस्तारपूर्वक विधि शुक्रनीति के अध्याय चार में लिखी है। तोप आदि विद्या आर्यावर्त देश से मिस्र वालों, उनसे यूनान, उनसे रोम, फिर यूरोप तथा यूरोप से आदि देशों में फैली।

वैशाली के युद्ध में अजातशत्रु ने महाशिलाकंटक और रथमूसल नामक युद्धास्त्रों का प्रयोग किया था। महाशिलाकंटक एक ऐसा यंत्र था, जिसके द्वारा शत्रुओं पर बड़े-बड़े शिलाखंड बरसाए जाते थे। रथमूसल रथ के प्रकार का यंत्र था, जो अश्व व सारथि रहित होता था, जिसे रिमोट कंट्रोल द्वारा परिचालित किया जाता था। यह रथ चक्कर काटता हुआ अपने मूसलों से शत्रु को काट गिराता था। प्रो. राय चौधरी ने रथमूसलों की वर्तमान युग में टैंकों से समता की है। अथर्ववेद में धनुष, बन्दूक के छर्रे (गोली), ढाल, तोप आदि का स्पष्ट उल्लेख है। शत्रु को सीसे की गोली मारने का भी वर्णन लिखा है।

34. आर्यों का संगीतशास्त्र बहुत उन्नति का था। संगीत में गान,

वाद्य और नृत्य का समावेश होता था। सामवेद का एक भाग गान है, जो सामगान के नाम से प्रसिद्ध है। देवगिरि के यादव राजा सिंघण के दरबार के गायनाचार्य सांगदेव ने अपनी रचना संगीत रत्नाकर में प्राचीन संगीत के विद्वानों की सूची में सदाशिव, शिव, ब्रह्मा, भरत, कश्यम, मतंग, याष्टिक, दुर्गा, शक्ति, नारद, तुम्बुरू विशाखिल, रम्भा, रावण, क्षेत्रपाल आदि का उल्लेख किया है। सोंग संगीत का अपभ्रंश है।

35. राजनीति में कौटल्य का अर्थशास्त्र, महाभारत का शांतिपर्व एवं कानून में मनु स्मृति मान्यता प्राप्त प्रामाणिक ग्रंथ हैं। सर विलियम जोंस ने लिखा है कि किसी समय मनुस्मृति यूनान, मिस्र आदि देशों में भी प्रचलित थी।

36. चित्रकला के जनक आर्य ही हैं। पहाड़ों को खोदकर सुंदर गुफाएँ बनाई जाती थीं। उन सुंदर विशाल गुफाओं पर रंगीन चित्र बनाए जाते थे। भारत में इस प्रकार की चार गुफाएँ आज भी संसार को आश्चर्यचकित कर रही हैं। अजंता (जिला औरंगाबाद), हैदराबाद की गुफाएँ विश्वप्रसिद्ध हैं। अजन्ता के भित्ति चित्रों को देखकर आज संपूर्ण संसार आश्चर्यचकित है। रायगढ़ की गुफाएँ क्या कम आश्चर्य हैं?

37. वास्तुशास्त्र के जनक आर्य ही हैं। अथर्ववेद के कांड 9 के तीसरे सूक्त में महाभवनों के निर्माण का वर्णन है। ऋग्वेद में पत्थर के बने सैकड़ों नगरों के अलावा लोहे की नगरियों का भी सुंदर वर्णन है, जिससे पता लगता है कि प्राचीन आर्य जंगलों में रहने वाले असभ्य व जंगली न थे, किन्तु वे बड़े-बड़े सुंदर और मजबूत घर बनाते थे।

38. वेदकालीन आर्य वस्त्रों का निर्माण करना भी जानते थे। घर में स्त्रियाँ वस्त्र बुनकर उनमें सुंदर और मजबूत किनारियाँ काढ़ा करती थीं। वैन्स ने लिखा है कि ढाके का बना हुआ कपड़ा देखने से मालूम होता है, जैसे देवताओं ने बनाया है। सर टामस मनरो लिखता है कि एक भारतीय शाल को सात वर्ष तक ओढ़ने के बाद भी उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। औरंगजेब के काल तक अंगूठीभर में ढाके की मलमल के

थान छिपाए जा सकते थे, लेकिन अब यह कला भी उसी प्रकार समाप्त हो गई, जैसे वायुयान बनाने की भारतीय पद्धति बौद्धकाल में समाप्त हो गई थी।

39. पाश्चात्य विद्वान मानते हैं कि सबसे पहले 17वीं शताब्दी में उल्का व पुंछल तारों का ज्ञान वैज्ञानिकों ने खोजा। लेकिन उल्का के बारे में अथर्ववेद में लिखा है कि भूचाल वाली पृथ्वी की ओर उल्का आकर पृथ्वी की रगड़ से कुचलने पर हमारे लिए शांतिदायक हो। वेद कहता है कि धूमकेतु भी हमारे लिए कल्याणकारी हों। यहाँ प्रश्न उठता है कि उल्का व धूमकेतु के कल्याणकारी होने की प्रार्थना की गई है? उल्का और उल्काश्व (धूमकेतु) अंतरिक्ष में परिभ्रमण करते समय धूल और गैस पिण्ड सहित जब पृथ्वी के पास से गुजरते हैं, तो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण तेजी से पृथ्वी की ओर आते हैं और पृथ्वी के वायुमंडल में आकर घर्षण से चमकने लग जाते हैं। कुछ उल्का जलकर राख के रूप में तथा कुछ चट्टानों के रूप में पृथ्वी पर आकर गिरते हैं, जिनसे भय व दुर्घटना की आशंका होती है। अतः वेद में कल्याण की प्रार्थना की गई है।

40. शहबाजगढ़ी में एक पत्थर पर प्राचीन काल का बना हुआ रेल जैसे वाहन का चित्र है। अथर्ववेद के एक मंत्र में भी रेल के संबंध में लिखा है कि रथ कुप्स द्वारा सैकड़ों मनुष्यों को ले जाता है। यजुर्वेद में विद्युत की दीप्ति से चमकने वाले व वायु के वेग से चलने वाले वाहन (मोटर) का वर्णन है।

''गुरुवर, जब इतनी महान थी हमारी संस्कृति तो फिर यह सारी दुनिया में फैली क्यों नहीं?''

''फैली तो थी।'' गुरुवर ने आगे भारतीय संस्कृति के विस्तार के बारे में बताया था।

हमारी वैदिक संस्कृति कभी दुनिया भर में फैल गई थी और सारी दुनिया वेदों और वैदिक संस्कृति के आगे नतमस्तक हो गई थी। इसकी अब हम चर्चा करेंगे। महाभारत के बाद सुदूर पूर्व के देशों में भारतीय

संस्कृति का पुनर्प्रवेश सर्वप्रथम मलाया में हुआ था, जहाँ से औपनिवेशिक दक्षिण तथा पश्चिम की ओर बढ़े। मलाया का सबसे प्राचीन आर्य राज्य लंग-या-सु के नाम से प्रसिद्ध था। जिसका उल्लेख लिआंग वंश के इतिहास विक्रमी 559-613 में मिलता है। इस ग्रंथ के अनुसार इस राज्य की स्थापना उक्त ग्रंथ लेखन काल से 400 वर्ष पूर्व हुई थी। वहाँ का राजा चीनी सम्राट को आदर की दृष्टि से देखता था और वहाँ संस्कृत भाषा प्रचलित थी। शैलेन्द्र वंश के शासकों ने चम्पा और काम्बोज पर अधिकार किया। कंबोडिया के उत्तर में स्थिति काम्बोज को भारतीयों ने धर्मशास्त्र पर आधारित राज्य बना दिया था। जावा में भी वैदिक धर्म का पुनर्प्रचार हुआ। कुछ समय के लिए जावा शैलेन्द्र राजाओं के अधिकार में आया। वर नरेन्द्र (391-407 वि.संवत) आदर्श वैदिक शासक थे। बाद में जावा के महाराजा शैव मतावलंबी हुए। तत्पश्चात् महाराजा संजय ने चंडी कलशन के देवालय का निर्माण कराया था। कश्मीर के एक राजकुमार गुणवर्मन ने 5वीं शताब्दी में जावा की यात्रा की थी। जावा पर भारतीयों ने धनधान्य के लिए अधिकार किया था, क्योंकि जावा में सोने की बेहद खानें थीं। कौण्डिन्य नामक ब्राह्मण बहुत से योद्धाओं के साथ सुवर्ण भूमि (फुनान) पहुँचा था, उसने वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। उसके बहुत से शिष्य हो गए थे ओर वह ऋषि की तरह रहते थे। कौण्डिन्य के वंशजों ने बहुत दिनों तक शासन किया तथा वहाँ वैदिक संस्कृति एवं सभ्यता का खूब प्रचार किया।

काम्बोज में वैदिक धर्मावलंबी नरेशों का शासन 1128 विक्रमी संवत् तक रहा। श्याम के बौद्ध नरेश ऊ तांग ने अपनी नई राजधानी का नाम द्वारावती श्री अयोध्या रखा था और उन्होंने अपने नियमों-कानूनों का परिवर्तन मनु स्मृति के आधार पर किया था, जो श्याम के दक्षिण भाग में 19वीं शताब्दी तक प्रचलित रहे। ब्रह्मदेश की विधि संहिताओं के सूत्र भी संस्कृत धर्म शास्त्रों से ही लिए गए थे। सुदूरपूर्व के अनेक देशों में प्राचीन काल में संस्कृत ही राजभाषा रही थी। कंबोडिया में सूर्यवर्मा द्वितीय द्वारा निर्मित अंकोरवाट का मंदिर आज भी आर्यों की विजय गाथा सुना

रहा है।

इसी तरह भारत के उत्तर-पश्चिम देशों में भारत की संस्कृति व राजशाही जा पहुँची। अल् उमारी ने लिखा है कि एक वैदिक सम्राट ने बगदाद में नव बिहार स्थापित किया था। इस्लाम के उद्‌भव के बाद उस बिहार के धर्म शासक ही इराक के राजा या शासक बने। नव बिहार आजकल नव बहार के नाम से जाना जाता है। खोचन, कुचि, तुर्फान, शैल देश आदि राज्यों में भारत के धर्म प्रचारकों ने महाभारत के बाद भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत का पुनर्प्रचार किया। ईरान के वैदिक सम्राट दारा के प्राचीनतम शिलालेखों में कुशावती या कुशद्वीप में भारतवंशियों के राज्य का वर्णन है। इसी कुशद्वीप की नील नदी का वर्णन जो पुराणों में दिया हुआ है, उसको आधार मानकर जे.एच. स्पीक ने नील नदी के उद्‌गम स्थल का पता लगाया था। और उन्होंने अपनी 'नील नदी के उद्‌गम की खोज' नामक पुस्तक में पुराण वर्णित भौगोलिक वर्णन की प्रामाणिकता की सराहना की है। मैक्सिको की मय जाति की सभ्यता की भारतीय संस्कृति के साथ समानता की पर्याप्त चर्चा विद्वानों में हुई है। लम्पस्कस (मिस्र) नामक स्थान से प्राप्त चाँदी की थाली पर हाथी दांत के पायों के आसन पर बैठी हुई भारत माता का चित्र उत्कीर्ण है, जो लगभग दो सहस्र वर्ष प्राचीन है। खोतन का प्राचीन नाम कुस्तन, फरगने का प्रकण्व था। सरहद के गिरिगहरों में बसने वाले आयुधजीवी, आफरीदी (आप्रीताः) और मोहमन्दों (मधुमन्त) के नाम पाणिनी व महाभारत में विद्यमान हैं। पठानों का नामकरण भी ऋग्वेद के पक्थ के आधार पर हुआ। जो आर्य 'हमीर' कहे जाते थे, इस्लामीकरण के बाद वही अमीर कहे गए।

इंडोनेशिया कभी भारत का ही अभिन्न अंग रहा है। इसके प्रभाव आज तक देखे जा सकते हैं। इंडोनेशिया आज भले ही मुस्लिम राष्ट्र हो, लेकिन वैदिक संस्कृति और पौराणिक पात्रों का उनके हृदय में आज भी सम्मान है।

इंडोनेशिया की राजधानी जकार्ता की गगनचुंबी इमारतों के बीच

जगह-जगह हनुमान, कृष्ण, अर्जुन और राम की भव्य मूर्तियाँ स्थापित करने से न तो इस्लाम खतरे में पड़ता है और न ही धर्मनिरपेक्षता पर कोई आंच आती है। बानडुंग के एशियाई अफ्रीकी शिखर सम्मेलन की स्वर्ण जयंती के अवसर पर तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के साथ वहाँ गए भारतीय पत्रकार और अन्य लोग हवाई अड्डे से होटल जाते समय जकार्ता की सड़कों पर हनुमान, कृष्ण, अर्जुन आदि की मूर्तियां देखकर आश्चर्यचकित रह गए। बाद में होटल में अपने डॉलर भुनाने पर बदले में मिली इंडोनेशियाई मुद्रा पर गणेश की छवि अंकित देख उनकी हैरत का ठिकाना नहीं रहा। इंडोशियाई मुद्रा को रुपया ही कहा जाता है। यही नहीं वहाँ बोली जाने वाली भाषा का नाम भी 'भाषा' है।

इंडोनेशिया विश्व का सबसे अधिक मुस्लिम आबादी वाला देश है और वहाँ 20 करोड़ से ज्यादा लोग इस्लाम धर्म के अनुयायी हैं। इंडोनेशियाई समाज में रामायण और महाभारत के इन पात्रों का कितना गहरा असर है वह इस एक तथ्य से ही उजागर हो जाता है कि ये सभी मूर्तियाँ शहर के सबसे महत्वपूर्ण स्थलों पर स्थापित की गई हैं। इंडोनेशिया के स्टेट बैंक का नाम 'मंदिरा बैंक' है और उसके आधुनिक मुख्यालय के सामने वाले चौराहे पर गणेशजी की मूर्ति विराजमान है।

इंडोनेशिया की जड़ें तो उसकी प्राचीन हिन्दू संस्कृति में ही वास करती हैं, इसीलिए आधुनिक इंडोनेशिया को उसकी प्राचीन पहचान देने के लिए रामायण और महाभारत के नायकों को चुना गया। इंडोनेशिया में पाँचवीं शताब्दी से लेकर 12वीं शताब्दी तक हिन्दू राजवंशों का शासन रहा है। पाँचवीं से आठवीं शताब्दी तक इंडोनेशिया में तारूमानगारा और श्रीविजया नामक हिन्दू राजवंशों का शासन रहा।

आठवीं से दसवीं शताब्दी में मजापाहित राजवंश का और उसके बाद बारहवीं शताब्दी तक पाजाजारान हिन्दू राजवंश का। इस दौरान हिन्दू संस्कृति देशवासियों में इतने गहरे तक रच बस गई कि बारहवीं शताब्दी में अरबों के संपर्क में आने के बाद वहाँ की अधिकतर आबादी द्वारा इस्लाम

कबूल कर लिए जाने पर भी संस्कृति हिन्दू ही रही। मुस्लिम धर्म अपनाने के बावजूद इंडोनेशियाई लोगों ने अरबी या फारसी नाम नहीं अपनाए। उनके नामों में अभी भी संस्कृत का वर्चस्व है और वे हिन्दू होने का आभास देते हैं। उदाहरण के तौर पर उनके अब तक के पाँच राष्ट्रपतियों में से चार के हिन्दू नाम हैं, जैसे सुकर्ण, सुहार्तो, मेघावती और सुसील बामबांग युद्धोयोनो ये सभी मुस्लिम हैं।

इस प्रकार गुरुवर ने उन्हें भारत के अतीत के गौरव से परिचित कराया। दोनों में एक-दूसरे के प्रति बड़ा ही स्नेह था।

गुरु जी की कुटी में झाड़ू स्वामी दयानन्द ही दिया करते थे। एक दिन झाड़ू देकर कूड़ा एक ओर रख, बाहर फेंकने के लिए टोकरी देख रहे थे कि विरजानन्द की टांग कूड़े पर जा पड़ी। गुरु जी क्रोध में आ गए और उन्होंने दयानन्द को जोर से लात मार दी। दयानन्द कुछ समय पीछे वह टांग दबाने जा बैठे और नम्रता से कहने लगे, ''गुरुवर! मेरा शरीर तो तपस्या से पत्थर हो गया। उसे आपकी लात जैसे लगी ही नहीं। हां! आपकी लात अवश्य दुखती होगी।''

''ठीक कहते हो दयानन्द, पर तुम ऐसी ग लती करते ही क्यों हो? स्मरण रखो, जहां स्वच्छता है, वहीं ज्ञान प्रकट होता है।''

''क्षमा करें गुरुवर। आगे से ऐसा कदाचित् नहीं होगा।''

इस प्रकार गुरु की सेवा-सुश्रूषा करते हुए स्वामी दयानन्द ने लगभग 3 वर्षों में समस्त आर्ष ग्रंथों का पठन पाठन कर डाला।

विद्या समाप्त होने पर एक दिन समावर्तन के लिए नियत किया गया। सबने बारी-बारी से गुरु को दक्षिणा दी और उनसे उज्ज्वल भविष्य की कामना का आशीर्वाद लिया। जब दयानन्द की बारी आयी तो वे कुछ लौंग गुरु श्री के चरणों में रखकर बोले, ''भगवन! लौंग छोटी चीज है, पर और कुछ मिला ही नहीं, कृपया स्वीकार करें!''

''बेटा, मुझे तुमसे गुरु दक्षिणा में कुछ और भी चाहिए।''

''आज्ञा करें गुरुवर!''

"तुम्हें प्रतिज्ञा करनी होगी।"

"कहिए गुरुवर, क्या प्रतिज्ञा करनी होगी?"

"संसार वेदों को भूल गया है, इसलिए "वेदों की ओर लौटो" का संदेश घर-घर पहुंचा दो।"

"मैं वेदों का ज्ञान घर-घर पहुंचाने की प्रतिज्ञा करता हूं गुरुवर।"

"बहुत अच्छा, तुमसे मुझे यही आशा थी।"

इसके बाद गुरु विरजानंद दण्डी ने अपने शिष्य से तीन प्रतिज्ञाएं कराईं :

(1) वैदिक धर्म में प्रविष्ट हुई पौराणिक अनर्गलताओं का विनाश करना होगा।

(2) गौतम बुद्ध से पूर्व के युग की प्राचीन धार्मिक प्रणालियों की पुनः स्थापना करनी होगी।

(3) सत्य का प्रकाश और प्रचार करना ही धर्म है।

दयानन्द ने गुरुदेव से विदा लेते हुए उत्तर भारत में प्रचार कार्य आरम्भ कर दिया, परन्तु परमात्मा के उन दयालु मनुष्यों की परम्परा के विपरीत जो अपने श्रोताओं के नेत्रों के समक्ष स्वर्ग के लुभावने दृश्य उपस्थित करते रहते हैं, गीता के वीर नायक इलियड के हरक्यूलिस जैसे महान् वीर दयानन्द ने अपने एकमात्र सत्य विचार के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार के वेद-विरुद्ध विचारों को चुनौती दी। वे अपने काम में इतने सफल हुए कि 5 वर्ष के अल्प काल में ही उत्तर भारत की काया पलट हो गई, पर उनके आन्दोलन से धर्म के ठेकेदारों में हलचल मच गई, इसलिए चारों ओर उनके शत्रु बांस के जंगल की तरह उग गये। इसका परिणाम यह हुआ कि धर्म प्रचार के शुरुआती 5 वर्षों में 4 या 5 बार विष द्वारा उनके प्राण लेने की चेष्टा की गई। स्वामी दयानन्द पर विजय पाना असंभव था, क्योंकि वे वैदिक वाङ्मय और संस्कृत के अनुपम भण्डार थे, और उनके ज्ञान की बराबरी कोई न कर पाता था। उनके शब्दों की धधकती हुई आग से उनके विरोधियों का विरोध भस्मसात् हो जाया करता था। वे लोग दयानन्द की तुलना

जल की बाढ़ के साथ किया करते थे। शंकराचार्य के बाद दयानन्द जैसा वेदविज्ञ भारत भूमि में उत्पन्न नहीं हुआ।

दयानन्द ने गुरुवर को जो वचन दिया, उसे निभाने के लिए उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया था और अब वे उस राह पर चल पड़े थे, जो इतना कठिन था कि आम आदमी तो उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता, लेकिन स्वामी दयानंद ने धर्म सुधार और जन-कल्याण की जो नीति अपनाई वह आने वाले समय में सारी दुनिया के लिए अनुकरणीय बनने वाली थी।

पाखण्ड खण्डिनी

हरिद्वार में 12 साल में एक बार कुम्भ का मेला लगता है। इसमें भारत भर के नर-नारी लाखों की संख्या में इकट्ठे होते हैं। इतनी भीड़ होती है कि सारा भारत ही यहां इकट्ठा हुआ दृष्टिगोचर होता है। पर यहां पर सबसे अधिक पाखण्ड का बोलबाला देखा जा सकता है। इस प्रकार लोगों को सामाजिक कुरीतियों से मुक्त करके और वेदों के प्रति जिज्ञासु बनने के लिए स्वामी दयानन्द ने हरिद्वार का रुख किया।

हरिद्वार से यात्री ऋषिकेश को जाते हैं। ऋषिकेश साधुओं का स्थान है। उसी रास्ते में एक स्थान पर दयानन्द ने अपना झण्डा गाड़ा। उस पर लिखा था : 'पाखण्ड-खण्डिनी पताका'।

लोग 'हर की पैड़ी' पर स्नान करके समझते हमारे जीवन-भर के पाप धुल गए। यहां पहुंचते तो यह भ्रम ही धुल जाता। यहां तो उपदेश होता कि 'हर की पैड़ी' पर नहाने से कुछ नहीं बनता। अच्छे कर्म करो, वेद की शिक्षा पर चलो! यही पुण्य है, यही तीर्थ है। वेदों की शरण में आओ, यह परमात्मा की वाणी है।''

कुम्भ में आकर स्वामी जी ने भारत का एक छोटा-सा चित्र देख लिया। साधुओं के कई रंग थे। सबसे बुरे नागा थे, जो लंगोट तक न पहनते थे। न उन्हें स्त्री की लज्जा थी, न पुरुष की। बैठे कुचेष्टा करते रहते। वैरागी, उदासी, निर्मल और न जाने कितने प्रकार के अन्य साधु

थे। इन्हें पहले नहाने का हक था, पुलिस न होती तो दंगा करते। महन्त और साधु गद्दीदार हाथियों पर चढ़कर आते। ठाठ राजाओं से भी बढ़कर था। जो पूछो तो 'त्यागी' हैं। ऐसा था उन दिनों के भारत का हाल।

कुंभ मेले से स्वामी दयानन्द की ख्याति देश भर में फैल गई और देश इस राष्ट्रीय संत के पीछे-पीछे चलने लगा। स्वामी दयानन्द ने अपने आंदोलन को ज्यादा प्रभावी बनाने के लिए मुंबई में ''आर्य समाज'' नामक सामाजिक संस्था की स्थापना की।

प्रारम्भ में स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज के 'तीन' सिद्धान्त निर्धारित किए

(1) वेदों में शाश्वत सत्य है।

(2) आर्य समाज का प्रत्येक सदस्य अपनी आय का 1/100 भाग आर्य समाजी विद्यालय को अथवा आर्य समाज के समाचार पत्र 'आर्यप्रकाश' को देगा।

(3) आर्य समाज द्वारा स्थापित शिक्षण संस्थाएं केवल वेदों की शिक्षा प्रदान करेंगी, लेकिन सन् 1877 में स्वामी जी ने इन सिद्धांतों के स्थान पर 10 नए नियम बनाए, जो इस प्रकार हैं :

1. सब सत्य विद्याओं और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

2. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करने योग्य है।

3. वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

4. सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहिए।

6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

7. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य बरताव करना चाहिए।

8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए, बल्कि सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

राष्ट्रीय एकता के सूत्रधार दयानन्द स्वामी ही थे। नवभारत के स्वप्न दृष्टा के रूप में महर्षि दयानन्द ने एक शताब्दी पूर्व ही एक ऐसे भव्य भारत का चित्र खींचा था, जो लोकतांत्रिक होने के साथ-साथ समाज में फैली विभिन्न कुरीतियों से मुक्त हो। स्वामी जी एक ऐसे भारत की स्थापना करना चाहते थे जहां प्रेम, सहयोग तथा बंधुत्व का साम्राज्य हो और जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने गुणों के अनुरूप कार्य करने की स्वतंत्रता हो। वह भारत की यश पताका को विश्व भर में फहरा देना चाहते थे और भारत को इस विश्वगुरु के पदरूप में देखना चाहते थे।

महर्षि दयानन्द व्यक्ति-व्यक्ति के बीच बनी खाई को सदैव के लिए भर देना चाहते थे। यही कारण है कि उन्होंने जाति-पांति के भेद का डटकर विरोध किया तथा भारतीय समाज पर लगे इस कलंक को धो डालने के लिए 'अन्तर्जातीय विवाह' का चौंका देने वाला आदर्श प्रस्तुत किया। दयानन्द चाहते थे कि भारत में हिन्दू धर्म का स्वरूप पूर्णतः परिमार्जित हो। यही कारण है कि उन्होंने 'शुद्धि आन्दोलन' का सूत्रपात किया। इस आन्दोलन द्वारा जो हिन्दू अपना धर्म त्यागकर ईसाई या मुसलमान बन गए थे, उन्हें शुद्ध करके हिन्दू धर्म में लाया गया। उल्लेखनीय है कि लगभग 50,000 मलकाने राजपूतों को और उन हिन्दुओं को, जिन्हें मोपला विद्रोह के दौरान बलपूर्वक मुसलमान बना दिया गया था, हिन्दू धर्म में लौटने का अवसर मिला। शुद्धिकरण ने ईसाई व मुस्लिम धर्म के उन ठेकेदारों के मुंह पर करारा चांटा मारा, जो भोले-भाले हिन्दुओं का धर्मान्तरण करते थे।

काशी शास्त्रार्थ

स्वामी दयानन्द सरस्वती सत्य और असत्य का निर्णय शास्त्रार्थ के द्वारा किया करते थे। वे एक ऐसा धर्म चाहते थे, जो वैज्ञानिक सिद्धांतों की कसौटी पर खरा उतरे और सबको माननीय हो और वह धर्म था वैदिक धर्म। इसलिए उन्होंने वेदों की ओर लौटो का नारा दिया। स्वामी दयानन्द ने शास्त्रार्थ के बल पर देशभर में फैले पाखण्ड को जड़ से उखाड़ फेंकने का सूत्रपात किया, तो तब शास्त्रार्थ में पराजित हुए पौराणिकों ने दयानन्द को काशी में आने के लिए आमन्त्रित किया। दयानन्द निर्भयतापूर्वक वहां गये, और 1861 के नवम्बर मास में उस महान् शास्त्रार्थ में प्रवृत्त हुए जिसकी तुलना होमर के काव्य में वर्णित संग्राम के साथ की जा सकती है। लाखों आक्रान्ताओं के सामने जो उन्हें परास्त करने के लिए उत्सुक थे, उन्होंने अकेले 300 पण्डितों के साथ शास्त्रार्थ किया। दयानन्द ने अपना आधार वेद को बनाया हुआ था। वेदों के आगे पण्डितों का धीरज टूटते हुए देर न लगी। महाभारत जैसे इस संघर्ष की प्रतिध्वनि से समस्त भारत गूंज उठा, जिसका परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष में उनका नाम प्रसिद्ध हो गया।

कई समाचार पत्रों में शास्त्रार्थ का आंखों देखा हाल प्रकाशित होने लगा। उस दिन तो शास्त्रार्थ में हद ही हो गई। पंडित सत्य को असत्य से दबाना चाहते थे। पर क्या सत्य कभी दबाया जा सकता है? काशी

नरेश की अध्यक्षता में यह शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। 50 हजार श्रोताओं की भारी-भरकम भीड़ शास्त्रार्थ को ध्यान से सुन रही थी। उस दिन सबसे पहले पंडित ताराचन्द ने स्वामी जी से पूछा ''आप किन ग्रंथों को आर्यों के धर्मग्रंथ मान्य मानते हैं?''

''ईश्वर वाणी परम पावन वेदों को।'' स्वामी ने प्रत्युत्तर पूछा, ''क्या आप भी वेदों को मानते हैं?''

''हां मैं वेदों को प्रामाणिक मानता हूं।''

''वेद में यदि मूर्ति-पूजा का विधान हो तो, प्रमाण पेश करो।''

''वेद के अतिरिक्त अन्य ग्रंथ भी तो प्रमाण हैं?''

''पहले वेद की बात का निश्चय हो जाए, बाद में अन्य ग्रन्थों के विषय में बात कर लेंगे। मुख्य प्रमाण वेद हैं। अन्य ग्रन्थ गौण हैं। इस कारण यदि वेद में इस विषय में कुछ नहीं तो मूर्तिपूजा नहीं करनी चाहिए।''

अब स्वामी विशुद्धानन्द ने आगे आकर कहा, ''रचना की अनुपत्ति असिद्धि होने से अनुमान द्वारा वर्णित प्रधान जगत् का कारण नहीं है। व्यास के इस सूत्र को वेद-मूलक सिद्ध कीजिये।''

''यह बात उपस्थित वाद के साथ सम्बन्ध नहीं रखती।''

''तो क्या हुआ? यदि आपको इसका समाधान आता है, तो बताइये।'' उन्होंने कहा, ''यूं ही पंडित बने फिरते थे?''

''इसका मूल पाठ देखकर ही समाधान किया जा सकता है।''

''यदि सब कुछ स्मरण नहीं तो काशी में शास्त्रार्थ करने के लिये आये ही क्यों हैं? शास्त्रार्थ कोई मजाक है क्या?''

''क्या आपको सब कुछ स्मरण है?''

''हां, हमको सब कुछ स्मरण है।''

''तो बताइये, धर्म के कितने लक्षण हैं?''

''वेद में कहे फल सहित कर्म ही धर्म है।''

''यह तो आपका कथन है, कोई शास्त्रीय प्रमाण दीजिये।''

''धर्म का लक्षण प्रेरणा कहा गया है।''

''यह भी ठीक, परन्तु प्रेरणा कहते हैं श्रुति स्मृति की आज्ञा को। श्रुति स्मृति की आज्ञा में धर्म के लक्षण बताइये।''

''धर्म का एक ही लक्षण है।''

''शास्त्र में धर्म के दस लक्षण बताये हैं।''

''कहां ऐसा लिखा है?''

''घृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचिन्द्रिनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥''

विशुद्धानन्द मौन हो गये।

तब बाला शास्त्री कहने लगे, ''धर्म शास्त्र का अध्ययन मैंने किया है। इस विषय में हमसे पूछिये।''

स्वामी जी ने कहा, ''आप अधर्म के लक्षण बताइये।''

बाला शास्त्री भी चुप हो गये।

इस पर सब पण्डित चिल्लाने लगे, ''वेद में प्रतिमा शब्द है या नहीं?''

स्वामी जी ने कहा, ''वेद में प्रतिमा शब्द तो है, परन्तु वह पूजा के सम्बन्ध में नहीं है।''

''तो किस प्रकरण में है?''

''प्रतिमा शब्द यजुर्वेद के 32वें अध्याय के तीसरे मन्त्र में है। यह सामवेद के ब्राह्मण में भी है। परन्तु यहां पाषाणादि के पूजन का द्योतक नहीं। इसलिए मैं इसका खण्डन करता हूं।''

इस पर स्वामी जी ने मन्त्र की विस्तार से व्याख्या कर दी।

तब इधर-उधर के प्रश्न होने लगे। अब फिर विशुद्धानन्द ने पूछ लिया, ''वेद कैसे उत्पन्न हुए?''

''सृष्टि के आरम्भ में वेद का प्रकाश ईश्वर ने किया।''

''किस ईश्वर ने किया?''

''क्या आप अनेक ईश्वर मानते हैं?''

''ईश्वर तो एक ही है, परन्तु वेद के प्रकाशक ईश्वर के लक्षण बताइये।''

"उसका लक्षण सच्चिदानन्द है।"

"कार्य कारण का।"

"जैसे मन में और सूर्यादि में ब्रह्म बुद्धि करके उपासना कही है, वैसे शालिग्राम आदि में ईश्वरभावना करके पूजन में क्या हानि है?"

इस समय मध्याचार्य जी बोल पड़े, "उद्‌बुध्यस्वाग्ने मूर्ते। इसे मूर्ति का आयोजन क्यों नहीं लेते?"

"मूर्त पूर्ति का वाचक है, मूर्ति का नहीं।"

इस प्रकार चार घंटे तक वार्तालाप चलता रहा। सब पण्डित बारी-बारी से निरुत्तर हो गये। अनेक विषयों पर वार्तालाप हुआ। पण्डित वर्ग कोई प्रमाण मूर्ति पूजा के पक्ष में नहीं दे सका। इस पर स्वामी जी से वंचना खेली गई। एक पण्डित, वामनाचार्य, किसी पुस्तक के दो पुराने पन्ने जो अत्यन्त अस्पष्ट लिखे हुए थे, निकाल कर ले आये और कहने लगे कि ये वेद के पृष्ठ हैं। इनमें लिखा है : यज्ञ समाप्तौ सत्यां दशमें दिवसे पुराण-पाठं श्रृणुयात् अर्थात् यज्ञ समाप्ति के दसवें दिन पुराणों का श्रवण करें।"

स्वामी जी ने कहा, "पढ़ कर सुनाइये।"

विशुद्धानन्द ने पन्ने वामनाचार्य से लेकर स्वामी जी की ओर कर दिये और कहा, "आप ही पढ़ लीजिये।"

स्वामी जी ने कहा, "आप ही पढ़िये।" इस पर विशुद्धानन्द कहने लगा, "मैं चश्में के बिना नहीं पढ़ सकता। आप ही पढ़िये।"

स्वामी जी ने पन्ने ले लिये और पढ़ने का यत्न करने लगे। लिखावट अत्यन्त अस्पष्ट थी और अंधेरा हो गया था। इस कारण स्वामी जी को पढ़ने में कुछ समय लगा। अभी दो मिनट से अधिक समय नहीं हुआ था कि सभी लोग "दयानन्द पराजित" की घोषणा करते हुए उठ खड़े हुए। पर समाचार पत्रों में दयानन्द को विजयी घोषित किया गया।

इस प्रकार का शास्त्रार्थ पौराणिक पण्डितों ने पुनः करने का साहस नहीं किया। पौराणिक पण्डितों ने घोषणा कर दी थी कि दयानन्द पराजित

हुए हैं, परन्तु इस शास्त्रार्थ के उपरान्त भारत भर में स्वामी दयानन्द की विद्वत्ता की धूम मच गई थी। इसके पश्चात् पौराणिक पण्डित स्वामी जी से शास्त्रार्थ के लिये पुनः आगे नहीं आये। स्वामी जी को व्याख्यानों के लिए बुलाया जाने लगा। उनके भाषणों के लिए टिकट तक बुक होने लगे, कई बार तो एडवांस में टिकट बुक हो जाने के कारण बहुत से जिज्ञासु उनके भाषण सुनने से वंचित रह जाते थे।

शास्त्रार्थ में बार-बार परास्त होने के बाद, स्वामी जी के विरोधी और तो कुछ न कर सके, एक व्यक्ति को स्वामी जी के आकार का तैयार किया, जिसे सर घुटा, गले में जूतों की माला पहना व गधे पर बिठा कर सारे शहर में घुमाना शुरू किया। यह दृश्य स्वामी जी के शिष्यों से नहीं देखा गया। वे आग बबूला हो गये और स्वामी जी को यह सब दिखाकर कहने लगे, "गुरु जी, यह क्या अनर्थ हो रहा है? विरोधियों ने आपकी क्या दशा बना रखी है?"

स्वामी जी थोड़ी देर चुप रहे, फिर धैर्यपूर्वक उन्होंने अपने शिष्यों से कहा, "ठीक ही तो कर रहे हैं, नकली दयानन्द का तो यही हाल होना चाहिए, असली दयानन्द तो आपके सामने खड़ा है।"

स्वामी जी वेदों के पण्डित होने के साथ ही विनोदप्रिय भी थे। उनके विनोद अशिष्ट न होकर शिक्षाप्रद होते थे।

एक बार अलीगढ़ में एक पण्डित शास्त्रार्थ के लिए आया, किन्तु वह स्वामी जी से ऊंचे चबूतरे पर बैठा। उसे लोगों ने स्वामी जी के साथ नीचे बैठने को कहा, पर वह नहीं माना।

स्वामी जी ने कहा, "कोई बात नहीं, ऊपर ही बैठा रहने दो, ऊपर बैठने से कोई बड़ा नहीं हो जाता।" पास के एक वृक्ष की ओर संकेत करके स्वामी जी ने कहा, "देखो, वह कौवा पण्डित से भी ऊपर बैठा है।" वह व्यक्ति बहुत लज्जित हुआ, और दयानन्द का शिष्य बन गया।

उसी दिन एक वणिक् स्वामी दयानन्द के पास आया और प्रणाम करके बोला, "स्वामी जी, मैं आपका परमभक्त हूं। मैं अपनी दुकान बेचकर

दस हज   ार रुपये प्राप्त कर लेने की स्थिति में हूं। मैं यह राशि आर्यसमाज को दान कर देना चाहता हूं, ताकि आर्यसमाज का भव्य प्रासाद बन सके।''

स्वामी जी ने पूछा, ''तुम्हारा परिवार कितना बड़ा है?''

''मेरी धर्मपत्नी है, दो बच्चे हैं। कमाने वाला मैं ही हूं। दुकान ही मेरी आय का स्रोत है।'' वणिक् ने बताया।

स्वामी जी ने कहा, ''भलेमानस, दुकान बेचकर मिलने वाली राशि दान करके घर-गृहस्थी का भार कौन वहन करेगा? क्या घर परिवार के प्रति तुम्हारा कोई दायित्व नहीं? यह गृहस्थ धर्म के प्रति अन्याय होगा। तब दान-धर्म का निर्वाह कैसे होगा?''

वह शांत रहा।

''मैं तुम्हारी भावना का आदर करता हूं। दस हज   ार रुपये दान में नहीं ले सकता। इसमें से मात्र एक हज   ार रुपया दान लिया जा सकता है। शेष नौ हज   ार का उपयोग कर सूझबूझ से अपना नया वणिक्-व्यापार कीजिए।''

अब स्वामी दयानन्द को आभास हुआ कि अपने धर्म की बुराइयों का काफी सफाया हो चुका है, तो उनका ध्यान दूसरे धर्मों की बुराइयों पर टिका। उन्होंने कुरान और बाइबिल का अध्ययन किया और उनका जोरदार शब्दों में खंडन करने लगे। इससे ईसाई और मुसलमान भी उनके शत्रु बन गये, पोंगा-पंडित तो उनके दुश्मन थे ही। इसलिए उन्हें बार-बार जहर देकर मारना चाहा, लेकिन जहर को वे न्योली क्रिया द्वारा निकाल देते थे।

मिर्जापुर में दयानन्द ने मुसलमानों को पराजित किया। कितने ही मुसलमानों ने दयानन्द के हाथों से यज्ञोपवीत पहन कर अपना जीवन धन्य किया।

धर्म प्रचार की अलख

स्वामी दयानंद सरस्वती धर्म प्रचार के लिए घूम-घूमकर अलख जाग रहे थे। वे कहते थे कि उनके पास समय बहुत कम है और काम बहुत अधिक। वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए स्वामी जी संवत् 1626 में कलकत्ता पहुंचे। वहां इनका सम्पर्क ब्रह्म समाजियों से हुआ। बाबू केशवचन्द्र सेन से उनकी भेंट हुई। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से भी वे मिले और दोनों से शास्त्र-चर्चा होती रही। ये दोनों कलकत्ता के विख्यात सुधारक थे। स्वामी जी उनके जाति सुधार कार्य से सर्वथा सहमत थे, परन्तु उनकी घोषणा कि इस्लाम और ईसाई मत भी सत्य मत हैं, इससे वे मतभेद रखते थे।

बाबू केशवचन्द्र सेन से स्वामी जी की चर्चा इस बात पर होती रही कि वेद ही क्यों परमात्मा का ज्ञान माने जाए? कुरान और बाइबल भी क्यों न इस्लाम की पुस्तकें मान ली जायें? स्वामी जी ने अपने मत के समर्थन में कई युक्तियां दीं, जिनमें एक युक्ति यह थी कि बाइबल और कुरान कथा-कहानियां हैं। स्वामी जी बंगाल के प्रसिद्ध नेताओं से मिलते, वार्तालाप करते और कुछ के साथ शास्त्रार्थ भी करते रहे। इन दिनों स्वामी जी एक कौपीन ही पहनते थे और शरीर पर भस्म रमाते थे। यहां बाबू केशवचन्द्र सेन जी के कहने पर मिलने वाले लोगों के आने पर वे वस्त्र धारण करने लगे।

कलकत्ता में स्वामी जी की तब के वायसराय से भेंट हुई थी। जनवरी

सन् 1873 में कलकत्ता स्थित लार्ड बिशप चर्च ऑफ इंग्लैण्ड, स्वामी जी को लेकर वायसराय लार्ड नार्थब्रुक के पास गये। वार्तालाप द्विभाषिये के द्वारा हुआ। नार्थब्रुक ने गोसेवा से संबद्ध अनेक प्रश्नों के उत्तर भी पाये।

यह वार्तालाप स्वामी जी के राजनीतिक विचारों की धुरी प्रकट करता है। ईसाई पादरी स्वामी जी के मूर्तिपूजा खण्डन इत्यादि से यह समझ रहे थे कि स्वामी जी हिन्दू जनता का विश्वास पौराणिक धर्म से ढीला कर रहे हैं। उनका विचार था कि इस प्रकार हिन्दू लोगों का अपने धर्म-कर्म से विश्वास उठ जायेगा और वे शीघ्र ही ईसाई मत को स्वीकार कर लेंगे। इस कारण यत्र-तत्र ईसाई पादरी स्वामी जी से मिलते रहते थे। इसी सम्बन्ध में भारत स्थित सबसे बड़े अंग्रेज पादरी स्वामी जी को वायसराय हिन्द के पास लेकर गये थे। परन्तु वहां वार्तालाप का विषय दूसरा हो गया। स्वामी जी ने तो ईसाई मत की ही धज्जियां उड़ा दीं।

लार्ड नार्थब्रुक ने यह घटना अपनी साप्ताहिक डायरी में प्रधानमन्त्री और इंग्लैंड के सैक्रेट्री ऑफ स्टेट को लिखी। इसमें वायसराय ने यह भी लिखा कि उसने इस बागी फकीर की कड़ी निगरानी के लिये गुप्तचर नियुक्त करने का आदेश दे दिया है।

वायसराय की डायरी में जो लिखा गया, उसका अनुवाद इस प्रकार है, ''औपचारिक शिष्टाचार के उपरान्त वायसराय ने स्वामी जी से पूछा, ''पण्डित दयानन्द! मुझे सूचना मिली है कि आप द्वारा दूसरे मत-मतान्तरों व धर्मों की कड़ी आलोचना उन धर्मों के मानने वालों के मन में क्षोभ उत्पन्न करती है। विशेष रूप में मुस्लिम और ईसाई जनता के। क्या आप अपने शत्रुओं से किसी प्रकार का भय अनुभव करते हैं? अर्थात् क्या आप सरकार से अपनी सुरक्षा का कोई प्रबन्ध चाहते हैं?''

स्वामी दयानन्द ने उत्तर दिया, ''मुझे अपने विचारों का प्रचार करने की अंग्रेज ी राज्य में पूरी स्वतन्त्रता है। मुझे व्यक्तिगत रूप में किसी प्रकार का खतरा नहीं है।''

''यदि ऐसा ही है तो क्या आप अपने उपदेश में अंग्रेज ी शासन द्वारा

उपलब्ध उपकारों का भी वर्णन किया करेंगे? और शासन चलाने में हमारी मदद करेंगे?''

''यह असंभव है। मैं हमेशा अंग्रेज़ी शासन के विनाश के बारे ही सोचता हूं।''

अब स्वामी दयानन्द खुलकर ईसाई मत का खंडन करने लगे। इसी के निमित्त वे पटना पहुंचे, क्योंकि वहां हिन्दुओं को ईसाई बनाया जा रहा था।

एक दिन पटना में स्वामी दयानन्द सरस्वती उपदेश दे रहे थे। उस दिन भारत के जंगी लाट लार्ड रॉबर्ट्स भी पधारे हुए थे। जंगी लाट ने स्वामी जी को प्रणाम करके कहा, ''स्वामी जी, मेरा विश्वास है कि फकीरों की दुआ भगवान अवश्य सुनता है, इसलिए आप दुआ करें कि भारत में अंग्रेज ी राज स्थायी हो।''

यह बात सुनकर स्वामी जी का चेहरा लाल हो गया और वे बोले, ''मैं तो भगवान से सुबह-शाम प्रार्थना किया करता हूं कि भारत से जल्दी ही अंग्रेज ी शासन समाप्त हो जाए, क्योंकि कोई कितना ही अच्छा शासन क्यों न करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वही सर्वोपरि और उत्तम होता है।''

इस पर जंगी लाट को भी क्रोध आ गया, वे स्वामी जी से कहने लगे, ''यदि मैं तुम्हें तोप के सामने बंधवाकर कहूं कि हमारे राज्य के लिए शुभकामना करो, नहीं तो तोप से उड़ा दिये जाओगे, तब क्या करोगे?''

फिर क्या था, स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सिंह गर्जना की, और बोले, ''मैं कहूंगा मुझे तोप से उड़ा दो, लाट साहब! कौटिल्य ने लिखा है 'नत्वेवार्यस्य दासभावः' अर्थात् आर्य जाति को कभी गुलाम नहीं बनाया जा सकता, यह सर्वथा सत्य है। इसलिए, तुम्हारा राज समाप्त होना तो सुनिश्चित है।''

जिस देश में इतने महान साधु हुए हों, उस देश को भला कौन गुलाम रख सकता था!

पटना में अगले दिन के भाषण के दौरान उनके ऊपर किसी विरोधी ने विषधर फेंक दिया। विषधर को पकड़कर दूर फेंकते हुए दयानन्द बोले, ''आज विषधर फेंक रहे हैं, कल फूलों की माला भी यही लोग फेंकेंगे।''

और ऐसा ही हुआ। जब दयानन्द ने सैकड़ों ईसाई बने लोगों को पुनः हिन्दू बनाया तो पूरे शहर में हाथी पर बैठाकर दयानन्द की शोभायात्रा निकाली गयी। इससे अंग्रेज सरकार तिलमिला उठी।

इसके बाद दयानन्द अनूप शहर पहुंचे तथा वहां अपने प्रवचनों की अमृत वर्षा की। यहां उनके एक विरोधी ने पान में विष देकर मारने का षड्यंत्र रचा। दयानन्द ने न्योली क्रिया द्वारा विष निकाल दिया, लेकिन यह घटना पूरे शहर में जंगल की आग की तरह फैल गई। यहां के तहसीलदार सर सय्यद अहमद दयानन्द के परम भक्त बन गये थे, जब उन्हें इस घटना का पता चला तो, उन्होंने अपराधी को गिरफ्तार कर लिया और उसे स्वामी दयानन्द के सामने उपस्थित किया, ''भगवन! आपका अपराधी आपके सामने है, आप कहें तो इसे आपको मारने की चेष्टा में मृत्यु-दंड दिलवा दिया जाए या आजन्म कैद में डाल दिया जाए।''

''इसे छोड़ दो।'' दयानन्द बोले, ''मैं संसार को कैद कराने नहीं, कैद से मुक्त कराने आया हूं।''

धर्म प्रचार करते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती कर्णवास पहुंचे तो उस पौराणिक नगरी में खलबली मच गई। स्वामी दयानन्द ने एक सुन्दर स्थान पर अपना आसन लगाया। लोग उनके दर्शन करने एवं प्रवचन सुनने आने लगे। पास ही बरेली गांव था। वहां के ठाकुर कर्णसिंह को जब स्वामी जी द्वारा मूर्ति-पूजा खंडन का समाचार मिला तो बौखला गये। और दयानन्द को मारने के लिए वे उनके पास आये, ''ऐ बाबा! यहां क्यों बैठे हो?''

''धरती मेरी माता है, इसलिए इसकी गोद में बैठना मेरा धर्म है।''

''धरती तो क्षत्रियों की है, इसलिए उठकर चलते बनो।''

''क्यों?''

''जहां तुम बैठे हो, वहां तो हम बैठेंगे।''

स्वामी जी थोड़ा खिसक गये और अपनी चटाई पर उसको जगह दे दी। ठाकुर पूछने लगा, ''गंगा स्नान को नहीं गये?''

''स्नान करने से क्या होगा? मुक्ति तो भले कर्मों से होगी। इस जल में स्नान करने से कुछ नहीं होगा।''

''अच्छा, रामलीला देखोगे?''

''अपने बड़ों का स्वांग रचकर तुम क्षत्रियों को लज्जा नहीं आती?''

इस पर ठाकुर का और क्रोध चढ़ आया और वह अपनी तलवार निकाल बैठा। स्वामी जी ने उसका हाथ इतनी जोर से पकड़ा कि तलवार भूमि पर गिर गई। स्वामी जी ने तलवार उठा उसके दो टुकड़े कर ठाकुर से कहा, ''लो, ले जाओ इस खिलौने को और ताकत ही दिखानी है, तो अंग्रेज ों से लड़ो और देश को आज ाद कराओ।''

कर्णसिंह लज्जित-सा चुपचाप सभा से बाहर निकल गया। सभासदों ने स्वामी जी से कहा, ''इसकी थाने में रपट लिखानी चाहिए।''

परन्तु स्वामी जी ने कहा, ''वह अपने क्षात्र धर्म को निभा नहीं सका। तो क्या हम भी अपने ब्राह्मणत्व से पतित हो जाएं? यदि बुद्धिमान होगा तो इतनी-सी बात से ही समझ जायेगा।''

कर्णसिंह ने कुछ हत्यारों को स्वामी जी की हत्या के लिये भेजा। परन्तु वे स्वामी जी के डील-डौल शरीर को देख कर ही भाग गये।

वहां से स्वामी जी संयुक्त प्रांत की ओर बढ़े। मथुरा में विपक्षियों ने एक और युक्ति खड़ी की। जानते थे स्वामी जी का बल ब्रह्मचर्य ही के कारण है, सो इसे भंग करने पर तुल आए।

उन्होंने एक वेश्या को गहने पहनाकर स्वामी जी के पास भेजा कि हो न हो, इसका जादू चल जाएगा। स्वामी जी समाधि लगाए परमात्मा का चिन्तन कर रहे थे। चेहरे से योग का तेज बरस रहा था। वेश्या एक बार तो डरकर बाहर निकल आई। धूर्तों ने कुछ लोभ चढ़ाकर, कुछ डर दिखा कर भेजा। वेश्या फिर गई तो स्वामी जी की पवित्र छवि पर ऐसी

मुग्ध हुई कि गहने उतारकर रोने लगी। स्वामी जी की समाधि खुली तो हैरान हुए, ''माताश्री आप?''

अब वेश्या, वेश्या न रही थी। ऋषि के पांव पर गिरी और अपना अपराध सुनाकर क्षमा मांगने लगी, ''प्रभु, मुझे माफ करें।''

''माता को पुत्र से क्षमा मांगना शोभा नहीं देता।''

सन् 1877 ई. में लार्ड लिटन ने दिल्ली में दरबार किया, सब प्रान्तों के गवर्नर तथा अंग्रेज और देसी राजा-महाराजा एवं सर्वसाधारण गण पधारे। स्वामी जी को प्रचार की धुन थी। ऐसा बड़ा अवसर हाथ से जाए, यह असम्भव था! जहां राजा-महाराजाओं के शिविर थे, वहीं दयानन्द सरस्वती का भी डेरा विद्यमान था। उसकी खूब धूम थी। स्वामी जी ने वहां उपदेशों की झड़ी लगा दी और कई राजा-महाराजा तथा जन नेताओं ने दर्शन किए और उपदेशों का अमृतपान किया।

स्वामीजी ने मुसलमानों के नेता सर सय्यद अहमद खां, ब्रह्मसमाज के केशवचन्द्र सेन, नवीनचन्द्र राय और हरिश्चन्द्र चिंतामणि तथा हिन्दुओं में कन्हैयालाल अलखधारी और मुंशी इन्द्रमणि, इन सबको अपने डेरे पर बुलाया और कहा, ''अलग-अलग काम करने से क्या बनता है? आओ, विज्ञान पर आधारित वैदिक धर्म को मानकर एक साथ काम करें'' परन्तु शोक है कि ये महाशय अपने अलग-अलग मतों में ही रहे और एक न हो सके। ये सब महाशय दूसरे मतों के थे, परन्तु स्वामी जी का इन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि मरते दम तक ऋषि के भक्त बने रहे।

इसके पश्चात् कई सज्जनों ने चांदपुर ग्राम में मेला किया और मुसलमानों, ईसाइयों और वैदिक-धर्मियों को बुलाया कि आपस में धर्म-विचार करें। मुसलमानों की ओर से मौलाना मुहम्मद कासिम, ईसाइयों की ओर से पादरी नोबल और वैदिक-धर्मियों की ओर से स्वामीजी ने संवाद किया। तीनों के हस्ताक्षरों से वहां का सारा संवाद छप गया। उसे पढ़ने से पता लगता है कि वैदिक सिद्धान्तों के आगे किसी और मत की नहीं चल सकती।

संवाद में सबने वैदिक धर्म को ही सबसे महान धर्म स्वीकारा। इसके बाद स्वामी जी पंच नदियों के प्रदेश पंजाब की ओर धर्म प्रचार करते हुए निकल पड़े। पंजाब के अमृतसर में एक दिन व्याख्यान हो रहा था कि विपक्षी बीच में आ कूदे। उन्हें मानपूर्वक बिठाया गया। उनके साथ गुण्डों की सेना थी। थोड़ी देर चुप रहे, फिर सभा में खलबली डालने को ईंट-पत्थर फेंकने लगे। स्वामी जी को तो एक भी ईंट न लगी, परन्तु और कई भले मानसों को चोट आई। स्वामीजी ने सबको धैर्य देते हुए कहा, ''आज जहां हमारे भाइयों पर पत्थर बरसते हैं, वहां किस दिन फूल बरसेंगे।'' स्वामी जी ने माथा रुमाल से पोंछ लिया और शांति से उपदेश देते रहे।

एक दिन सुखवासी लाल साधु महर्षि के लिए कढ़ी और भात बनाकर लाए और उन्होंने उसे खाया। इस पर ब्राह्मणों ने कहा कि आप भ्रष्ट हो गए, जो साधु के घर का भोजन खा लिया। महर्षि ने उत्तर दिया कि भोजन दो प्रकार से भ्रष्ट होता है, एक तो यदि किसी को दुख देकर धन प्राप्त किया जाए और उससे अन्न आदि क्रय करके भोजन बनाया जाए। दूसरे, भोजन मलिन हो या उसमें कोई वस्तु गिर जाए। साधु लोगों का परिश्रम का पैसा है। उनसे प्राप्त किया हुआ भोजन उत्तम है।

इसी क्रम में निमंत्रण पर वे अलीगढ़ पहुंचे। वहां एक दिन सर सय्यद अहमद महर्षि दयानन्द से मिलने गए और कहने लगे, ''महाराज, आपकी अन्य बातें तो युक्तिसंगत हैं, परन्तु यह बात समझ में नहीं आती कि थोड़े-से हवन से वायु का सुधार कैसे होता है?''

महर्षि ने कहा, ''जैसे थोड़े-से बघार से सारी दाल सुगन्धित हो जाती है और दूर तक सुगन्ध जाती है, वैसे ही हवन में डाली हुई सामग्री छिन्न-भिन्न हो वायु में फैलकर उसका सुधार कर देती है।'' इससे उनका संशय दूर हो गया।

स्वामी जी वहां से फर्रुख ाबाद गए। वहां लाला जगन्नाथ ने महर्षि दयानन्द से पूछा, ''कृपा करके बतलाइए कि मनुष्य का क्या कर्तव्य है?''

महर्षि ने कहा, ''मनुष्य का कर्तव्य ईश्वरीय आज्ञाओं के पालन, अर्थात् वेदानुकूल आचरण, धर्म के दस लक्षणों पर चलने और अधर्म-त्याग से हो सकता है।''

धर्म प्रचार करते हुए वे प्रयाग पहुंचे। प्रयाग में महर्षि के पास नाना प्रकार के तिलकधारी लोग बैठे थे और महर्षि उन्हें कह रहे थे, ''मस्तक का शृंगार करने की अपेक्षा ईश्वरोपासना द्वारा आत्म-शृंगार किया करो। ऐसा तिलक लगाने से तुम्हारा क्या प्रयोजन है? आडम्बर रचना महात्माओं का काम नहीं है। शोक, महाशोक, तिलक आदि चिन्ह बनाने में लोगों की रूचि है, तथा योगाभ्यास में नहीं। मूर्खों! जितने समय में तुम यह तिलक लगाते रहे, इतने समय में गायत्री क्यों न जप लो!''

एक दिन का वर्णन है कि छानल-निवासी ठाकुर ऊधोसिंह अपने पिता और ठाकुर भोपालसिंह जी के साथ महर्षि के दर्शन करने के लिए प्रयाग आए। उस दिन ऊधोसिंह जी के वस्त्र नए ढंग के थे और सबके सब विलायती कपड़े के बने थे। महर्षि ने अति प्यार से कहा, ''ऊधव, देखो तुम्हारे पिता कैसे मोटे, सादे और अपने देश के कपड़े से बने वस्त्र पहनते हैं! उनका जाति-बिरादरी में कितना अधिक सम्मान है। क्या तुम इस विदेशी कपड़ों से बने नए वेश से विभूषित होकर अपने पिता से अधिक अच्छे हो गए हो? ऊधव, अपने ही देश के वस्त्र-वेश को अपनाने में शोभा है।''

महर्षि का यह उपदेश ऊधोसिंह के हृदय में घर कर गया और घर पहुंचते ही उन्होंने विदेशी वस्त्रों को उतार फेंका।

भड़ौच में महर्षि दयानन्द के साथ पंडित कृष्णाराम भी रहते थे। एक दिन पंडित जी को ज्वर हो आया। महर्षि स्वयं उनका सिर दबाने लगे। पंडित जी ने कहा, ''महाराज, आप क्या करते हैं? मैं आपसे कैसे सेवा करा सकता हूं?''

महर्षि बोले, ''इसमें कोई हानि नहीं है। दूसरों की सेवा करना मनुष्य का धर्म है। यदि बड़े, छोटों की सेवा न करेंगे, तो छोटों में सेवा का भाव कैसे होगा?''

बम्बई में स्वामी जी ने आर्य समाज की स्थापना की थी। वहां वे कई बार गए। एक बार बम्बई में महर्षि दयानन्द जिस स्थान पर ठहरे थे, वहां उनके लिए और उनके कर्मचारियों के लिए भोजन बनता था। महर्षि इस बात का बहुत ध्यान रखते थे कि रसोई में जो पदार्थ बनें, वे सब कर्मचारियों को मिल जाएं। इसलिए स्वयं भोजन के समय रसोई में चले जाते थे। रसोई में सब वस्तुएं तोलकर दी जाती थीं, ताकि आवश्यकता से अधिक भोजन न बने। एक दिन एक कर्मचारी ने महाराज से कहा, ''सब आपको कृपण समझेंगे।''

उन्होंने कहा, ''मुझे इसकी चिन्ता नहीं। मिताहार और मितव्यय दुर्गुण नहीं, सद्गुण हैं।''

बम्बई में ही एक दिन महर्षि दयानन्द क्षौर (हजामत) करा रहे थे। एक सज्जन ने आकर कहा, ''संन्यासियों का धर्म तो त्याग है, आप देहविभूषा में क्यों लगे हैं?''

महर्षि ने हंसते हुए उत्तर दिया, ''यदि बाल बढ़ाने में ही त्याग है, तो रीछ सबसे बड़ा त्यागी है।'' यह कहकर उसे उपदेश दिया कि देह की रक्षा के लिए उसे संवारना पाप नहीं है। जो पुरुष परोपकारी हैं, उन्हें अपनी देह की रक्षा करना और भी आवश्यक है, ताकि वे उपकर-कार्य अच्छी प्रकार कर सकें।

बम्बई में एक पंडित ने महर्षि दयानन्द से कहा, ''सुना है, आप धन ले लेते हैं। और शास्त्र में लिखा है कि यतियों को सुवर्ण ने देवें।''

महर्षि ने कहा, ''सुवर्ण नहीं तो क्या आपकी सम्मति में रत्न आदि लेने चाहिए?'' उसे समझाया, ''यतियों के लिए धन संग्रह करने का निषेध है। परोपकार में व्यय करने के लिए धन लेना पाप नहीं। हम भी जब तक कौपीन लगाकर गंगा-घाट पर घूमते थे तो किसी से कुछ न लेते थे, किन्तु जब से हमने परोपकार के कार्यों में भाग लेना आरम्भ किया है, हमें उन कार्यों के लिए धन लेना पड़ता है। जैसे कुएं की मिट्टी कुएं में ही लग जाती है, ऐसे ही हम भी जो धन जिनसे लेते हैं, वह उन्हीं

के हितकर कार्यों में लगा देते हैं।''

मुंबई से स्वामी जी भक्तों के कहने पर एक बार संयुक्त प्रांत में प्रचार करने के लिए पुनः आए। इस क्रम में एक दिन साहू श्यामसुन्दर ने, जो मुरादाबाद के रईस थे, परन्तु वेश्यागमन आदि दुर्व्यसनों में ग्रस्त थे, स्वामी दयानन्द से प्रार्थना की, ''महाराज, आप मेरे घर पर चलकर भोजन कीजिए।'' महर्षि ने इस प्रार्थना को अस्वीकार किया। परन्तु इसी समय जब एक दूसरे सज्जन ने यही प्रार्थना की तो उसे स्वीकार कर लिया। साहू श्यामसुन्दर ने महर्षि को उपालम्भ दिया तो उस समय तो महाराज चुप रहे, किन्तु व्याख्यान में इस घटना का जि क्र करके और साहू साहब को सम्बोधन करके कहा कि जब तक तू कुकर्म न छोड़ेगा, हम तेरे घर पर जाकर भोजन न करेंगे। उसके बाद वे इन्द्रप्रस्थ आ गए। महर्षि दयानन्द दिल्ली में थे तो पंजाब के ब्रह्म समाजियों तथा अन्य लोगों ने उन्हें लाहौर पधारने की प्रार्थना की। महर्षि लाहौर पहुंचे। व्याख्यान आरम्भ हुए। ब्रह्म समाजी घबरा गए और स्वामी जी से रुष्ट हो गए। जब मूर्तिपूजा का खंडन हुआ तो दूसरे लोग भी नाराज हो गए।

एक दिन पंडित बनफूल ने उनसे कहा, ''आप मूर्तिपूजा का खंडन न करें तो हिन्दू आपसे अप्रसन्न न हों और महाराज जम्मू-कश्मीर आपसे बहुत प्रसन्न होंगे।''

''महाराज जम्मू-कश्मीर को प्रसन्न करूं अथवा ईश्वर की आज्ञा का पालन करूं, जो वेदों में अंकित है?'' महर्षि ने कहा।

धर्म प्रचार करते हुए वहां से स्वामी जी कुछ धर्मनिष्ठ सिख बंधुओं के निमंत्रण पर अमृतसर पहुंचे।

अमृतसर में एक बाल पाठशाला के अध्यापक ने एक दिन अपने छात्रों से कहा, ''आज महर्षि दयानन्द की कथा में चलेंगे। तुम अपनी झोलियों में ईंट, रोड़े और कंकर भरकर मेरे साथ चलना और जब मैं संकेत करूं तो तुम कथा कहनेवाले पर ईंट, रोड़े और कंकर फेंक देना। मैं तुम्हें लड्डू दूंगा।''

अबोध बालकों ने अपनी झोलियां भर लीं और अध्यापक के साथ चल पड़े। व्याख्यान रात्रि के आठ बजे समाप्त हुआ करता था। जब कुछ-कुछ अंधेरा हो गया तो अध्यापक का संकेत पाकर बालकों ने कंकर व रोड़े बरसाने शुरू कर दिए। लेकिन कुछ भक्त उत्तेजित हो उठे और छात्रों को पकड़कर पीटने के लिए उठे तो छात्र भाग खड़े हुए। भक्तों को किसी तरह महर्षि ने शान्त कर दिया। लेकिन जब पुलिस कुछ बालकों को पकड़कर उनके सामने लाई तो बालक फूट-फूटकर रोने लगे। महर्षि ने उन्हें धैर्य बंधाकर उनसे ऐसा कार्य करने का कारण पूछा तो उन्होंने सारा वृत्तान्त सच-सच कह दिया। तब महर्षि ने बाजार से लड्डू मंगवाकर बालकों को दिए और कहा कि तुम्हारा अध्यापक शायद तुम्हें लड्डू न दे, इसलिए मैं दे देता हूं।

एक दिन दो राज्यकर्मचारी महर्षि दयानन्द से मिले और कहने लगे कि खंडन में क्या धरा है, इससे लोग उत्तेजित होते हैं। हम तो उसी कर्म को अच्छा समझते हैं कि जिसमें अपना भला हो। परहित-चिन्तन और परोपकार तो ढकोसला है।

महर्षि ने उत्तर दिया, ''अपनी भलाई का काम तो गधे और अन्य पशु-पक्षी भी करते हैं, मनुष्य की मनुष्यता तो इसमें है कि दूसरों का उपकार करे।''

गुजरांवाला में एक दिन महर्षि दयानन्द ने अपने व्याख्यान में कहा, ''सरदार हरिसिंह नलवा बड़ा शूरवीर था। कारण सम्भवतः यही था कि 25-26 वर्ष तक उसका ब्रह्मचर्य अखंडित रहा। मैं दृढ़तापूर्वक कहता हूं कि किसी को अपने बल का घमंड हो तो मैं उसके हाथ पकड़े लेता हूं। वह छुड़ा लेवे। अथवा मैं हाथ खड़ा करता हूं, उसे झुका देवे।''

उस समय लगभग 500 की उपस्थिति होगी, जिसमें कई पहलवान भी थे। परन्तु किसी को महर्षि के आवाहन को स्वीकार करने का साहस न हुआ।

एक दिन किसी ने महर्षि दयानन्द से शंका की, ''इसका क्या कारण

है कि लोग नाच-रंग को सारी रात जागकर देखते रहते हैं; परन्तु धर्मोपदेश में सो जाते हैं।''

महर्षि ने कहा, ''उसमें उत्तेजना होती है, अतः नींद नहीं आती है और इसमें शान्ति मिलती है, फिर वे सोएं न तो क्या करें?''

पंडित पोहलोराम महर्षि दयानन्द के एक अनन्य भक्त थे। एक दिन अमृतसर में उन्होंने नैराश्य भाव में महर्षि से कहा, ''आर्य समाजियों की संख्या बहुत थोड़ी है। इतने थोड़े मनुष्यों से क्या बनेगा?''

महर्षि ने उन्हें धैर्य बंधाते हुए कहा, ''आप तो बहुत हैं, सहस्रों को अपना साथी बना सकते हैं। मैंने जब कार्य प्रारम्भ किया था तो मैं एकला ही था। आज परमेश्वर की कृपा से मेरे सहस्रों साथी हैं। यदि बालशास्त्री और विशुद्धानन्द मेरा साथ देते तो हम तीनों संसार को जीत लेते, परन्तु शोक है कि वे मेरे भावों को जाने बिना ही मुझसे विरोध करने लगे।''

पंडित गौरीशंकर ज्योतिषी एक दिन महर्षि दयानन्द की सेवा में आए और कुछ वार्तालाप करना चाहा। महर्षि दयानन्द ने उनके आने का कारण पूछा तो उन्होंने कहा, ''मैं ज्योतिषी हूं। कुछ प्राप्ति की लालसा से आया हूं।''

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने उनसे कहा, ''यदि आपके ज्योतिष ने यह बतलाया है कि आपको प्राप्ति होगी तो यह मिथ्या है, क्योंकि मैं आपको कुछ नहीं दूंगा। और यदि यह बतलाया है कि प्राप्ति न होगी तो आपने व्यर्थ परिश्रम किया है।''

स्वामीजी जी एक शहर से दूसरे शहर में प्रचार अभियान बड़ी तेजी के साथ चला रहे थे। इसी क्रम में जालंधर में सरदार विक्रमसिंह ने स्वामी जी से कहा, ''सुना है, ब्रह्मचारी बहुत बलवान् होता है।''

''हां, शास्त्रों में भी लिखा है और बात भी ठीक है।''

''इसका प्रमाण?''

स्वामी जी चुप रहे।

लेकिन जब सरदार बग्घी पर चढ़कर जाने लगे। साईस ने अपना

सारा जोर लगा लिया, पर घोड़े आगे को हिलते ही न थे। पीछे देखा तो स्वामी जी ने पहिया पकड़ रखा था।

स्वामी जी ने बग्घी छोड़ दी और कहा, ''लीजिए, ब्रह्मचर्य का प्रमाण!'' सरदार नीचे उतरकर स्वामी जी के चरणों में गिर पड़ा।

स्वामी दयानन्द जहां पुराणों के दोष दिखाते थे, वहां इंजील तथा कुरान का भी खण्डन करते थे। अमृतसर में उन्होंने ईसाई मत के दोष दिखाए तो पादरियों ने खड्गसिंह को बुलाया कि स्वामी जी के आक्षेपों का जवाब दे। खड्गसिंह बारह वर्ष से ईसाई हो चुका था और ईसाई मत का प्रसिद्ध प्रचारक था। अमृतसर आते ही खड्गसिंह सीधा स्वामीजी के स्थान पर पहुंचा और झट आर्य हो गया, ''दयानन्द से मैं कैसे भिड़ सकता हूं, यह तो मसीहा हैं।'' वह ईसाइयों से फिर मिला ही नहीं। पादरी मुंह ताकते रहे।

रुड़की में स्वामी दयानन्द के व्याख्यान में एक मज हबी सिख आ बैठा। मज हबी सिख वे होते हैं जो अपने हाथ से पशुओं को मारते हैं। वे लोग अशुद्ध समझे जाते हैं। किसी ने उससे घृणा कर उसे पहले स्थान से उठा दिया। वह किसी दूसरे स्थान पर जा बैठा। यहां फिर किसी ने उठा देना चाहा। इस पर स्वामीजी ने रोका और कहा, ''बैठने दो, धर्म की बात है, इसे सब सुन सकते हैं। जैसे वायु सबकी है, वैसे वेद भी सबका है। जैसे सूर्य की ज्योति सबकी है, वैसे ही वेद भी सबका है। वेद से सबका कल्याण होने दो।''

संवत् 1935 वि. में फिर हरिद्वार में कुम्भ का मेला हुआ। स्वामीजी ने फिर वहां अपना डेरा जा लगाया। वेदों का नाद गूंज उठा। यहां स्वामीजी ने नागा साधुओं की बहुत आलोचना की, क्योंकि वे नंगे रहते हैं। आलोचना से क्रोधित होकर दो नागे स्वामीजी के स्थान पर आए और स्वामीजी को गालियां देने लगे, ''ओ दयानन्द! क्या है रे तू?'' स्वामीजी हँसे और उन्हें बड़े प्रेम से अपने पास बुलाया, ''आओ भक्तों।'' दूसरे दिन वे भक्ति से आए और शिक्षा ली। तब से वे कपड़े पहनने लगे और उन्होंने माला

आदि तोड़ दी।

अगले दिन सुबह सवेरे स्वामी जी गंगा के पानी में लेटे हुए थे। उनका आधा शरीर गंगा में था और आधा बाहर रेत पर।

कुछ लोगों ने देखा कि एक मगरमच्छ तेजी के साथ स्वामी जी ओर बढ़ा आ रहा था, तो उन्होंने स्वामी जी को सचेत किया, ''स्वामी जी मगरमच्छ आपकी ओर ही बढ़ा आ रहा है। जान बचानी है तो पानी से निकल भागो।''

''हमें परमेश्वर के सिवाय किसी से भय नहीं'', स्वामी जी ने कहा, ''जब हम ही किसी का अहित नहीं करते तो फिर हमारा अहित कौन करेगा।''

''लेकिन पशुओं में इतना ज्ञान नहीं होता कि वे अहित और हित पर विचार करें।''

''अवश्य होता है'' दयानन्द ने कहा, ''परमात्मा ने उन्हें भी बुद्धि दी है।''

और स्वामी दयानंद सरस्वती इसी तरह पानी में लेटे रहे। मगरमच्छ उनके पास से निकल गया, लेकिन उन्हें कुछ न कहा। लोग यह घटना देखकर स्वामी जी को दिव्य पुरुष समझने लगे थे।

हरिद्वार से वे बरेली पहुंचे। वहां भाषण देते हुए स्वामी जी ने कहा, ''महात्मा, ईसा की मां कुंवारी न थी। जिसके बेटा हुआ वह कुंवारी कैसे रही?'' कमिश्नर महोदय भाषण में आए थे, वे ईसाई थे। उन्हें यह सच बात बुरी लगी। स्वामीजी खजांची की कोठी पर उतरे थे।

कमिश्नर ने खजांची से कहा, ''स्वामीजी को समझाएं।'' खजांची स्वामीजी के पास इस काम के लिए आते हुए ही डरता था। अंत में उन्होंने स्वामीजी से बड़ी नम्रतापूर्वक यह बात कही, पर स्वामीजी ताड़ गए कि कमिश्नर ने कल की बात का बुरा माना है।

दूसरे दिन फिर व्याख्यान में कमिश्नर महाशय आए।

स्वामीजी ने ललकार कर कहा, ''कोई रूठे चाहे माने, मुझे सत्य कहना

है। राजा से भी सत्य कहना है, रंक से भी सत्य। पहले मुझे निश्चय करा दो कि कोई मेरी आत्मा को मार सकता है। फिर मैं सोचूंगा कि क्या सच को छिपाऊं?''

जब अंतिम बार दयानन्द जी काशी गए, तो एक दिन सैर से लौटते हुए एक गाड़ी देखी जो कीचड़ में धंस गई थी। बैल भी वहीं फंसे खड़े थे। गाड़ीवाला बैलों पर डंडे बरसा रहा था, पर बैल हिलने में ही नहीं आते थे। स्वामीजी को बड़ा दुःख हुआ, ''हे प्रभु! गौ पुत्रों पर ऐसा कहर. ..।'' वे स्वयं कीचड़ में उतरे। स्वामीजी ने स्वयं गाड़ी को खींच झट कीचड़ से बाहर किया।

राजपूताने में स्वामी जी ने राजाओं व प्रजा को धर्म की शिक्षा दी। अब वहां वे इस उद्देश्य से पहुंचे कि वहां के राजाओं को आर्य बनाएंगे ताकि देश को आज ाद किया जा सके। उदयपुर, जोधपुर आदि रियासत के राजा आपके शिष्य बन गए और जैसे आज्ञा पाई, वैसा ही आचरण करने लगे। स्वामी जी उनके इष्टदेव बन गये। उदयपुर के राजा ने एक बार अकेले में विनती की, ''स्वामिन्! मेरा राज महादेव के मन्दिर के अधीन है। यदि आप मूर्ति-पूजा का खण्डन छोड़ यहां के महन्त बन जाएं, तो कई लाख की जागीर उस मन्दिर के साथ है, वह आपकी होगी और राज्य के भी धार्मिक अधिराज आप होंगे।'' स्वामीजी चुपके-चुपके सुनते रहे। जब राजा की बात समाप्त हुई तो मुंह लाल हो गया। क्रोध में आकर कहा, ''राजन्, तुझे राजा होने का अभिमान है? तेरी रियासत से मैं एक दौड़ में पार हो सकता हूं, फिर तू मेरा क्या करेगा? मैं परमात्मा के राज्य को कैसे छोड़ूं? जो सब जगह है, उसकी आज्ञा मानूं या तेरी!''

राजा यह खरी बात सुनकर चुप था। बोला, ''मैंने तो परखने को बात बनाई थी। पर आप धन्य हैं! आपको न लोभ गिरा सकता है, न भय।''

कवि श्यामलदास ने बातों-बातों में कहा, ''स्वामिन्! आपने कितना उपकार किया। जी चाहता है प्रातः सायं आपका दर्शन करें। आप कहीं

चले जाते हैं, तो आपके सेवक आपकी मोहिनी छवि को तरसते हैं। आपका स्मारक होना चाहिए, अर्थात् मूर्ति बनाई जाए। उससे जहां आपके भक्त दर्शन पाएंगे, वहां प्रजा को कई प्रकार की शिक्षा मिलेगी।''

दयानन्द ने उत्तर दिया, ''नहीं, मरने के पीछे मेरी भस्म को भी किसी खेत में डालना, ताकि खाद के काम आए। इन स्मारकों से ही मूर्ति-पूजा चली है। मेरी मूर्ति बनवाकर उसे भी पुजवाना है क्या?''

स्वामी दयानंद अपने योग-बल से बड़ी से बड़ी जनसभा को मंत्र-मुग्ध कर लेते थे और प्रबल से प्रबल शत्रु उनके योगबल के सामने परास्त हो जाते थे। स्वामी दयानंद के तर्कतीर भी अमोघ हुआ करते थे। उनका निराकरण करना भी किसी प्रतिपक्षी के लिए संभव न था। ऋषि दयानंद को परास्त करने के बड़े-बड़े मन्सूबे बांधकर और बड़ी-बड़ी शंकाएं लेकर पंडितजन उनके समक्ष आते, किंतु योगाग्नि में तपने के कारण जो दिव्य तेज ऋषि के मुख पर रहता, उसके प्रभाव से सब हतोत्साह होकर घर लौटते थे।

अनेक बार मिष्ठानादि में विष मिलाकर उनके विरोधी उनके पास जाते किंतु ऋषिवर उनके आगमन के पूर्व ही बतला देते थे कि एक व्यक्ति अमुक वस्तुएं विष मिलाकर ला रहा है।

मेरठ में एक बार पंडित अश्विनीकुमार त्रिपाठी स्वामीजी के पास अनेक शंकाएं लेकर उपस्थित हुए। जन-समूह के विदा होने पर स्वामीजी ने पंडितजी का नाम लेकर पूछा 'पंडित अश्विनीकुमार जी कहिए, क्या शंकाएं लेकर आए हो?' पंडितजी सारी शंकाएं भूल चुके थे, उनसे केवल इतना ही कहते बना कि 'आपके रचित ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश का मनन कर सब शंका समाधान कर लूंगा', इस समय तो कुछ भी स्मरण नहीं रहा। ऐसी ही अनेक घटनाएं स्वामीजी के जीवन में ऐसी हैं जो इस बात का प्रमाण हैं कि स्वामी दयानंद निश्चय ही एक महान योगी थे।

ऋषि निर्वाण

जोधपुर जाते हुए किसी ने ऋषि से कहा, ''स्वामीजी! यह गंवारों का देश है। लोग समझेंगे कुछ नहीं और मुफ्त में प्राण हर लेंगे।'' स्वामीजी ने उत्तर दिया, ''गंवारों को समझाना ही तो मेरा मुख्य काम है। तुम कहते हो, वे मार डालेंगे। यदि वे मुझे जीते हुए की एक-एक अंगुली को काट लें तो मेरा जीवन सफल होगा।''

स्वयं राजा ने स्वामीजी को राजमहल में बुलाया था। स्वामीजी वहां गए तो वह शिष्य बन गया और उनसे राजधर्म की शिक्षा लेने लगा। धीरे-धीरे उसका आचार भी सुधरने लगा। और वे राष्ट्रहित में सोचने लगे। स्वामीजी ने सुना कि राजा ने एक वेश्या नन्हीं जान रखी हुई है। एक दिन दरबार में वेश्या नन्हीं जान की पालकी दिख गई। स्वामीजी से न रहा गया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि, ''शेर के लिए कुतिया का संग बहुत बुरा है।''

राजा पर तो इस डांट-डपट का प्रभाव अच्छा पड़ा, वह वेश्या से विमुख हो गया, पर वेश्या झट स्वामीजी की बैरिन हो गई। उसने कई राज-मन्त्रियों को अपनी तरफ गांठा और एक शत्रु-मण्डली सी बना ली। उसकी सलाह हुई कि स्वामीजी को विष दिया जाए। स्वामीजी के रसोईये जगन्नाथ को 500 रुपया देकर उससे दूध में कांच और पारा मिला हुआ विष दिलवाया गया। स्वामीजी को विष चढ़ गया और वे रोगी हो गए। दुर्भाग्य यह था कि जो डॉक्टर औषधि देने को आया, वह भी उसी शत्रु-मण्डली से मिला

हुआ था। स्वामीजी का हाल दिनों-दिन बिगड़ता चला गया। दिन में बीसियों दस्त आते थे। शरीर दुर्बल हो गया। फोड़ों से शरीर कुरूप हो गया। क्षण-क्षण में मूर्छा आने लगी। पेट से लेकर मुख तक शरीर के भीतर और बाहर सारे शरीर पर छाले हो गए। न बोला जाता था, न सांस ही लिया जाता था; भयंकर दर्द का कुछ ठिकाना ही न था। चिकित्सक अचम्भे में थे, ये जी किस तरह रहे हैं। स्वामीजी महीना-भर से कुछ ऊपर इस हालत में रहे, पर हाय तक नहीं की। चुपचाप सब सह गए। जोधपुर से आबू आए तो पालकी पर, वहां से अजमेर गए तो पालकी पर। अजमेर में दीपावली के दिन हजामत कराई, शरीर साफ कराया। उस दिन एक क्षण स्वामी को अकेला देख रसोईया उनके चरणों में गिर पड़ा, "प्रभु, क्षमा करें, मैंने ही विष दिया है।" जगन्नाथ ने उनके सामने अपना अपराध माना और पांवों पर गिरकर प्रार्थना की, "क्षमा कीजिए। मारा तो मैं जाऊंगा ही। यदि आप क्षमा कर दें, तो सन्तोष में मरूंगा।"

स्वामीजी ने उसे उठाकर अपने हाथों से पानी पिलाया और 500 रुपये देकर कहा, "ले, नेपाल देश भाग जा। वहां तुझे कोई न पकड़ेगा। मेरा मरना निश्चित है। सो किसी को शंका न होगी।"

सांयकाल साढ़े पांच बजे स्वामीजी ने कमरे के सारे द्वार खुलवा दिए। उपस्थित भक्तों को अपनी पीठ के पीछे खड़े होने का आदेश दिया। पूछा 'आज कौन-सा पक्ष, तिथि और वार है?'

पण्ड्या मोहनलाल ने उत्तर दिया 'भगवन आज कार्तिक कृष्ण पक्ष का अवसान है। तिथि अमावस्या और दिन मंगलवार है।'

उत्तर सुनकर स्वामीजी ने अपनी दिव्यदृष्टि से कमरे के चारों ओर देखा। उसके बाद गंभीर ध्वनि से वेद पाठ करना आरंभ कर दिया। वेदगान के अनंतर परम-प्रेम से पुलकित होकर संस्कृत में परमात्म देव की प्रार्थना करने लगे। इस समय उनका मुख-मंडल अलौकिक तेज से दमक रहा था। प्रार्थना के बाद वह परम-पवित्र गायत्री मंत्र का जाप करने लगे।

जाप करते-ही-करते वह मौन होकर समाधिस्त हो गए और इसी तरह बड़ी देर तक बैठे रहे।

जब समाधि से निकला 'हे दयामय, हे सर्वशक्तिमान ईश्वर! तेरी यही इच्छा है। सचमुच तेरी यही इच्छा है! परमात्मादेव तेरी इच्छा पूर्ण हो! मेरे परमेश्वर! तूने अच्छी लीला की।'

इन शब्दों का उच्चारण करते हुए ब्रह्मर्षि ने अपने प्राण को ब्रह्मांड द्वार से प्रणवनद साथ बाहर निकाल दिया। उनकी आत्मा अनंत में विलीन हो गई। उनकी पार्थिव देह धरती पर रह गई।

उपस्थित लोग फूटकर रो पड़े। आज जब दीपावली के उपलक्ष्य में सारा नगर दीपों के प्रकाश से जगमगा रहा था, आर्य-धर्म का प्रकाश पुंज बुझ गया।

आर्य पुरुषों ने स्वामीजी के शव को बड़े सम्मान के साथ ले जाकर नगर के दक्षिण भाग में पूर्ण वेदोक्त विधि से अंत्येष्टि संस्कार कर दिया। चंदन और पीपल की समिधाओं से चिता चुनी गई। रामानंद और आनंदजी ने यथाविधि चिता को अग्नि दी। उस दाह-कुंड में चार मन घृत, पांच सेर कपूर, एक सेर केशर और दो तोले कस्तूरी डाली गई। चरू और घृत की पुष्फल आहुतियों से श्री स्वामीजी का शरीर प्रेमियों के नीर-भरे नेत्रों से देखते-देखते अनंत में विलीन हो गया।

स्वामीजी की देह का दाह करने के बाद आर्यजन शोकातुर हृदय लिए नगर लौटे।

उनकी अस्थियों का चयन करके शाहपुराधीश के दिए उद्यान में गाड़ दिया गया। यह उद्यान अन्ना सागर के किनारे स्थित है।

आनंद सुधा सार दयाकर पिला गया।
भारत को दयानंद दुबारा जिला गया।

निम्नलिखित स्थानों में स्वामीजी को विष दिया गया

अनूपशहर में पान में। प्रयाग में मिठाई में। काशी में पान में। जोधपुर में दूध में।

निम्न स्थानों में स्वामीजी के अपहरण की चेष्टा की गई

मेरठ, दानापुर, कर्णवास, फर्रुखाबाद, सोरों, कानपुर, प्रयाग, रामनगर, काशी, मिर्जापुर, बंबई।

धुन के धनी थे स्वामीजी

स्वामी दयानंद सरस्वती धुन के धनी थे। उन्होंने जहां घूम-घूमकर देशभर में हजारों व्याख्यान दिए, सैकड़ों शास्त्रार्थ किए वहीं अनेक पुस्तकों का भी लेखन किया। उनकी लिखी पुस्तकें हैं :

संध्या, भागवत खंडन, काशी शास्त्रार्थ, आर्याभिविनय, स्वामी नारायण मत-खंडन, सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार विधि, वेदांत ध्वंति निवारण, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, ऋग्वेद भाष्य, यजुर्वेद भाष्य, वेद विरुद्ध मत-खंडन, सत्य-धर्म विचार (मेला चांदपुर), पंच महायज्ञ विधि, आर्योद्देश्य रत्नमाला, व्यवहार भानु, संस्कृत वाक्य प्रबोध गोकरुणनिधि, वेदांगप्रकाश, भ्रांति निवारण, भ्रमोच्छेदन।

स्वामीजी के सिद्धांतों पर भी चर्चा करना आवश्यक है। उन्होंने जिन सिद्धांतों को माना है, वे हैं :

1. ईश्वर का मुख्य नाम ओउम् है।

2. ईश्वर सच्चिदानंदस्वरूप, निराकर, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्व-शक्तिमान, निर्विकार, अजन्मा, अनंत, न्यायकारी, दयालु, सर्वसृष्टि का कर्ता-धर्ता, सब जीवों के क्रमानुसार सत्य-न्याय से फलदाता व आदि लक्षण युक्त है।

3. ईश्वर का कभी अवतार नहीं होता।

4. धातु, लक्कड़, पत्थर आदि की निर्मित मूर्ति की पूजा वेद विरुद्ध है।

5. विद्वान, माता-पिता, आचार्य, अतिथि, न्यायकारी राजा और धर्मात्माजन, पतिव्रता-स्त्री, पति का सत्कार करना वेद पूजा कहलाती है। इसके विपरीत ऊदेव पूजा, इनकी मूर्तियों को पूज्य और इतर शिव, गणेश, देवी आदि की पाषाणादि की मूर्तियों को अपूज्य समझना चाहिए।

6. जो ज्ञानादि गुणवाले का यथायोग सत्कार करता है उसको पूजा कहते हैं।

7. केवल ईश्वर का नाम जपने से कुछ नहीं होता, उसके धारण करने योग्य गुणों को अपने में धारण करना चाहिए।

8. जो गुण परमेश्वर में हैं उनमें युक्त और जो नहीं हैं उनसे पृथक मानकर प्रशंसा करना 'सगुण निर्गुण स्तुति', शुभगुणों के ग्रहण की इच्छा और दोष छुड़ाने के लिए परमात्मा का सहारा चाहना 'सगुण निर्गुण प्रार्थना' और सब गुणों से रहित, सब दोषों से रहित परमेश्वर को मानकर अपनी आत्मा को उसके और उसकी आज्ञाओं के अर्पण कर देना 'सगुण निर्गुणोपासना होती है।'

9. जिनका स्वरूप विद्यादि शुभगुणों का दान और सत्यभाषणादि सत्याचार का करना है, उसको 'पुण्य' कहते हैं। जो पुण्य से विपरीत है उसको पाप कहते हैं।

10. पहले ठीक-ठाक जानना, पुनः जैसा जाना हो वैसा ही बोलना 'सत्य' कहलाता है।

11. सर्व दुखों से छूटकर परमानंद को प्राप्त होना मुक्ति है, मुक्ति की अवधि पूर्ण होने पर जीव जन्म लेता है।

12. मुक्ति के साधन ज्ञान और कर्म दोनों हैं अर्थात सम-समुच्य है।

13. मुक्ति की प्राप्ति के लिए ईश्वरोपासना, सत्यभाषणादि धर्माचरण, सत्संग, सुविचार सुपुरुषार्थ, विवेक, वैराग्य, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान आदि का अभ्यास करे। अविद्या, मास्मितादि दोषों को बिलकुल छोड़ देवें। दुष्ट कर्मों से हमेशा पृथक रहे।

14. कंठी, तिलक आदि बाह्यचिह्न चक्रांकित का होना, नगाड़े पीटना

आदि मुक्ति के साधन नहीं हैं।

15. अभ्यास के लिए प्रथम शरीर के किसी अंग में 'ध्यान' करना चाहिए, पुनः निराकार परमेश्वर का।

16. संहिता भाग वेद हैं। वेद निर्भ्रांत और स्वतः प्रमाण हैं। वेदों का प्रकाश ईश्वर ने किया है, ऋषियों ने नहीं बनाए। वेदों के शब्द यौगिक हैं।

17. वेदों को पढ़ने का सबको अधिकार है। स्त्रियां और शूद्र भी वेद पढ़ सकते हैं।

18. वेद और उनके अनुकूल ऋषियों के ग्रंथ प्रमाण हैं और पढ़ने योग्य हैं।

19. वेद विरुद्ध ग्रंथ पुराण तंत्रादि त्याज्य हैं। पुराण व्यास के बनाए नहीं हैं।

20. जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा का यथावत पालन और पक्षपात रहित न्याय, सर्वहित करना है जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सुपरीक्षित और वेदोक्त होने से सब मनुष्यों के लिए एक यही मानना योग्य है, उसको धर्म कहते हैं।

21. धर्म में वेद प्रमाण हैं। युक्ति सहायक है।

22. जिसमें विद्वानों का सत्कार, यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थ विद्या उससे उपयोग और विद्यादि शुभ गुणों का दान, अग्निहोत्रादि जिनसे वायु, वृष्टि, जल, औषधि को पवित्र करके सब जीवों को सुख पहुंचाता है, उसको यज्ञ कहते हैं।

23. पशु मारना पाप है, यज्ञ में पशु हिंसा नहीं करनी चाहिए।

24. वर्णव्यस्था गुण-कर्मानुसार होनी चाहिए।

25. ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्या पढ़नी चाहिए।

26. गृहस्थी ऋतुगामी हों।

27. छल, कपट, चोरी, झूठ, अभिमानादि त्यागने योग्य है।

28. बिना पूछे किसी की कोई चीज लेना चोरी है।

29. आत्महत्या पाप है।

30. कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। बिना भोगे कर्म नहीं छूटते।

31. अपने-अपने वर्णाश्रम धर्म का सबको पालन करना चाहिए।

32. पंच महायज्ञ नित्य करने चाहिए।

33. संध्या चारों वर्ण कर सकते हैं।

34. शुद्ध भोजन शूद्र का भी खा लेना चाहिए।

35. आर्य धर्म में सब मिल सकते हैं।

स्वामी दयानंद का मूल्यांकन

स्वामी दयानंद निश्चय ही एक महान, संत थे। उनका मूल्यांकन करना बड़ा ही दुरूह कार्य है। ऐसा महापुरुष सदियों बाद ही जन्म लेता है। सच पूछिए तो वे तो नीर-क्षीर विवेकी परमहंस थे। कवि शिरोमणि तुलसीदासजी ने संत की उपमा कपास के पौधे से दी है, जैसे कपास के पैदा होते ही चर्खी में ओटा जाता है, फिर धुनकी में धुनकर चर्खे में काता जाता है, तत्पश्चात करघे में बुना जाता है, फिर धोबी उसे घाट पर ले जाकर पानी में पछाड़ता है। सूखने पर उसकी कुंदी की जाती है, फिर दर्जी उसके अंग-अंग काटकर सुई से बेधकर वस्त्र तैयार करता है और इस प्रकार वह कपास नाना कष्ट सहकर वस्त्र रूप में परिणित होकर परहित साधती है, उसी प्रकार परमहंस दयानंद को गृह त्यागने पर पिता के आदेश से सिपाही पकड़ते, गुरुविरजानंद उन पर क्रोधित होकर लाठी प्रहार करते, उत्तराखंड में विचरते हुए नाना यातनाएं सहन करनी पड़ती हैं और जब प्रचार-क्षेत्र में उतरते हैं तो अनेक बार उनको विष दिया जाता, राव राजा कर्णसिंह उन पर नंगी तलवार लेकर झपटते, बंगाल में तांत्रिक लोग उनको एक मकान में घेरकर देवी की बलि चढ़ाने की तैयारी करते और जोधपुर में उन पर घातक विष का प्रयोग किया जाता है, किंतु वे कभी लक्ष्य से विचलित नहीं होते और संसार के कल्याण के निमित्त रचे हुए अपने दिव्य यज्ञ में निरंतर शांतचित हो आहुति डालते चले जाते हैं।

मानव मात्र के हितैषी महर्षि दयानंद पर्वत की कंदराओं में बैठकर

समाधि का आनंद ले सकते थे और मोक्ष प्राप्त कर सकते थे, किंतु उन्होंने व्यक्तिगत मोक्ष प्राप्ति की कभी कामना न की। उनका लक्ष्य सामूहिक मुक्ति उपलब्ध करना था। वे तो सारी दुनिया का उत्थान करना चाहते थे। मानव सुजाति को मुक्ति का योग कराना था। इसलिए जगत-हित को लक्ष्य बनाकर वे कार्य-क्षेत्र में उतरे और निरंतर कष्ट-बाधाओं को हंसते-हंसते सहन करते हुए उन्होंने अपना लक्ष्य पूरा किया। स्वामी दयानंद द्वंद्व को सहन करने की दृष्टि से, भीषण कष्टों का सामना करने की दृष्टि से महान सहिष्णु थे, किंतु अनीति अनाचार के साथ, असत्य और अन्याय के साथ समझौता करना, उन परमहंस ने सीखा ही न था।

नाना मत, पंथों के दोषों और मिथ्या विचारों का खंडन करने में उन्होंने कभी संकोच न किया। वे अपनी बात निर्भीकता के साथ कहते थे और जो भी कहते थे स्पष्ट कहते थे। महाराज उदयपुर ने उनसे एकलिंग की गद्दी का महंत बनने की प्रार्थना की और मूर्तिपूजा के खंडन से विरक्त रहने का अनुरोध किया, किंतु महान संत दयानंद ने उस प्रार्थना को ठुकरा दिया और कहा कि मैं अपने उस महान स्वामी की, जो ब्रह्मांड का सम्राट है, आज्ञा मानूं या तेरी, जिसके राज्य से एक दौड़ में बाहर जा सकता हूं।

संत नग्न-सत्य का परम पुजारी हुआ करता है तो स्वामी दयानंदजी भी मनसा, वाचा, कर्मणा से एकमात्र सत्य के पुजारी थे। सत्य, जो सनातन है, सदा एकरस रहने वाला है, निरंतर उसको ही अपने जीवन में ढालना और उसका प्रचार करना संतशिरोमणि दयानंद का काम था।

कर्नल अलकाट एवं मैडम ब्लैवैटंवी ने उनको अपनी थ्योरसोफिकल सोसाइटी का परम गुरु बनाने का संकल्प कर उनसे भेंट की, किंतु सत्य ज्ञान के परम केंद्र, वेद में उनकी अनास्था देख ऋषि ने उनसे एकदम किनारा किया और उनके द्वारा उलपब्ध होने वाली विश्वख्याति के मोह को ठोकर मार दी।

स्वामी दयानंद की सत्य में बड़ी आस्था थी, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि स्वामी दयानंद केवल स्वयं सत्य के पुजारी न थे, बल्कि वे तो अपने अनुयायियों को भी सत्य का पुजारी बनाना चाहते थे और इसीलिए

आर्यसमाज के चौथे एवं पांचवें नियमों में सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में उद्यत रहने का आदेश दिया और सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने की प्रेरणा दी।

यह तो सभी जानते हैं कि संत पुरुष आदर्श, निराभिमानी किंतु स्वाभिमानी हुआ करते हैं। पूना में जिस समय स्वामीजी प्रचार करते थे। तो उन लोगों ने एक व्यक्ति को दयानंद के जैसे वस्त्रादि पहनाकर गधे पर चढ़ाकर उसकी सवारी निकाली और जब स्वामीजी को इसका समाचार मिला तो उन्होंने हंसकर कहा ‘ठीक ही तो है! नकली दयानंद के साथ यही सलूक किया जाना चाहिए।’

मेरठ आर्यसमाज के प्रथम वार्षिकोत्सव पर स्वामीजी स्वयं पधारे थे। समाज की अंतरंग सभा में स्वामीजी विशेष रूप से आमंत्रित थे। सदस्यों ने स्वामीजी से आर्यसमाज का परम-रक्षक बनने का अनुरोध किया तो उन्होंने हंसकर कहा ‘मैं तो तुम्हारा सदस्य भी नहीं, केवल एक दर्शक के रूप में यहां उपस्थित हुआ हूं। यदि मुझको परम-संरक्षक बनाओगे तो भोले लोग उस परम प्रभु को क्या कहकर पुकारेंगे?’ स्वामीजी का युक्तियुक्त उत्तर सुनकर सब अवाक् रह गए।

स्वामी दयानंद निश्चय ही उच्चकोटि के स्वाभिमानी भी थे। कलकत्ते में प्रचारार्थ जब स्वामीजी गए तो उनके व्याख्यानों से प्रभावित होकर कलकत्ता के लाट पादरी ने गवर्नर जनरल नार्थ ब्रुक से उनकी प्रशंसा की और स्वामीजी से उनको मिलाया।

लार्ड ब्रुक ने स्वामीजी से कहा ‘महाराज, आप विभिन्न मतपंथों की कड़ी आलोचना करते हैं, जनता इससे रुष्ट है। अतः आप कहें तो आपकी सुरक्षा की व्यवस्था कर दूं?’ स्वामीजी ने कहा ‘मलका विक्टोरिया के राज्य में सबको अपने-अपने धर्म के प्रचार की स्वतंत्रता प्राप्त है और मेरा रक्षक तो वह भगवान है, मुझे सरकार से सुरक्षा की कोई आवश्यकता नहीं।’ लार्ड ब्रुक ने कहा, ‘महाराज जब आप मलका के राज की सराहना करते हो तो भाषणों में भी अंग्रेजी राज्य की कुछ प्रशंसा कर दिया करो।’ इस पर स्वामीजी ने तड़ककर कहा ‘यह नहीं हो सकता! मैं विदेशी राज्य

को स्वदेशी राज्य की अपेक्षा हेय समझता हूं। अपने देश में अपना ही राज्य सर्वोपरि है।’ इस प्रकार स्वामी दयानंद स्वदेशभिमान, स्व-संस्कृति एवं स्वजाति के अभिमान के महापुजारी थे।

संतजन परम कारुणिक एवं दयालु हुआ करते हैं। स्वामी दयानंद ने अपनी भगिनी एवं चाचा की मृत्यु अपनी आंखों से देखी, किंतु उस समय कोई रुदन नहीं किया, किंतु जब गंगा किनारे एक गरीब नारी को अपने पुत्र की लाश को नग्न जलप्रवाह करते देखा तो वह महान संत दहाड़ मारकर रोने लगे और देश की पराधीनता और कंगाली पर खिन्न हो उठे। इतने महान थे वह महर्षि!

संस्कृत साहित्य में योग शब्द विस्तृत अर्थों वाला है। आप्टे ने योगी शब्द के 28 प्रकार के अर्थ किए हैं। योग से ही योगी शब्द निष्पन्न होता है। अतः योगी शब्द में ही वह सब अर्थ प्रायः घटित होते हैं।

योग का अर्थ ‘मेल’ है। ऋषि दयानंद ने ऊंच-नीच का भेद मिटाकर एवं जातिवाद के दुर्ग पर प्रहार करके मेल का प्रशस्त मार्ग जाति के सम्मुख उन्मुक्त किया है, अतः इस दृष्टि से स्वामी दयानंद महान योगी थे। योग का अर्थ जोड़ भी है। शुद्धि का मार्ग विस्तृत कर जाति की क्षीण होती संख्या को रोकने और फिर उसकी वृद्धि करने की ओर जाति का ध्यान आकर्षित किया। योग का एक अर्थ चिकित्सा भी है। स्वामी दयानंद, अज्ञान, अंधकार में भटकती हुई मानवता के सच्चे चिकित्सक थे।

सब प्रकार के आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक रोगों की चिकित्सा का श्रेय उस महान योगी को था।

‘योग कर्मसु कौशलं’ अर्थात् कर्मों को कुशलतापूर्वक सिद्ध करना भी योग कहलाता है। इस दृष्टि से स्वामी दयानंद निश्चय ही महान योगी थे। मानव जीवन के उत्थान संबंधी जितने भी सुनहरे नियम व कर्तव्य हैं, उन सबका विस्तारपूर्वक अपने ग्रंथों में उस महान योगी ने निर्देशन दिया है। स्वामी दयानंद केवल आध्यात्मिक साधनाओं के ही धनी नहीं थे, अपितु आर्थिक, सामाजिक, शारीरिक, नैतिक आदि विभिन्न साधनाओं से संपन्न वह महामानव थे। इसी हेतु उस महापुरुष को सर्वतोमुखी

प्रतिभाशाली व्यक्ति माना जाता है।

जहां समाज सुधार के क्षेत्र में हम स्वामी दयानंद को पथप्रदर्शन करते देखते हैं तो वहीं राष्ट्र की स्वाधीनता के क्षेत्र में भी निर्भय और निंशक होकर 'अपने देश में अपना राज्य' की शंखध्वनि करते उन्हें पाते हैं। ऋषि दयानंद ने नाना सामाजिक रूढ़ियों को व्यावहारिक रूप में अपने जीवन में तोड़ा। धनी-मानी तथाकथित द्विजों का अन्न ग्रहण न करके करीब किसान श्रमिकों का रूखा-सूखा भोजन ग्रहण करते उस महामानव को देखते हैं और यवनादि को धातु के पात्र में जलपान कराते भी देखते हैं।

'अब्राह्मण ब्राह्मणो....' आदि मंत्र में 'योगः क्षेमो न कल्पताम्' पाठ आता है, वहां प्रसंग योग, उत्पादन और क्षेम का अर्थ समान वितरक है। स्वामी दयानंद ने राष्ट्र की श्रीवृद्धि की दृष्टि से 'गो कृष्णादि रक्षिणी सभा' संस्थापित कर गो एवं कृषि संवर्धन पर बल दिया है। मानो 'अधिक अन्न उपजाओ' आंदोलन का सूत्रपात भी योगिराज दयानंद ने अपने जीवन में किया था।

आध्यात्मिक साधन की दृष्टि से भी स्वामी दयानंद एक आदर्श महान योगीजन सिद्ध की वृत्तियों पर उन्होंने पूर्ण नियंत्रण कर रखा था। वह तो निश्चय ही विलक्षण समाधि सिद्ध पुरुष थे। ऋषिवर ने अपने जीवन में महती यौगिक साधनाएं सिद्ध की थीं। कभी फर्रूखाबाद में गंगा के तट पर विद्यमान धर्मशाला में माघ मास के घोर जाड़े में स्वामी दयानंद मात्र एक कोपीन धारण किए खुले बरामदे में मात्र पुआल बिछाकर शयन करते थे तो कभी गंगा के पुलिन पर ज्येष्ठ मास की कड़ी धूप में शरीर तपाते उस महापुरुष को देखा जाता था।

उषाकाल से पूर्व गंगा में प्रवेश कर घंटों जलमग्न रहते और सूर्योदय के पश्चात एक चबूतरे पर समाधि लगाते उस महापुरुष को अनेक जनों ने अपनी आंखों से फर्रूखाबाद आदि नगरों में देखा था।

कभी मेरठ के गोल भट्टे के निकट घने ढाके में उस सिद्ध पुरुष को समाधिस्थ पाते हैं तो कभी मथुरा विश्राम घाट पर समाधि में बैठे उस माहमानव को देखा जाता है। किसी देवी द्वारा चरण-स्पर्श हो जाने पर वह महान योगी चित्त की वृत्तियों पर कड़ा नियंत्रण रखने की दृष्टि से लंबी

समाधि तान लेता है। एक बार पाठ विस्मरण होने पर विश्राम घाट के ऊंचे चबूतरे पर ऋषिवर दयानंद समाधि में बैठ जाते हैं और पाठ स्मरण होने पर वहां से उठते हैं। आगरा आदि में वेदों का गंभीर अनुशीलन एवं भाष्यकरण की वेला में किसी मंत्र के अर्थ गांभीर्य में प्रवेश होता न देख समाधि लगाकर मंत्र के अर्थों का साक्षात्कार करते भी उस महापुरुष को हम देखते हैं। महर्षि को पंच महाव्रत तथा सिद्ध थे। उदाहरणार्थ अहिंसा प्रतिष्ठियां वैर त्यागः के सिद्धांतानुसार ऋषि का अहिंसा व्रत पूर्ण तथा प्रसिद्ध था। भयंकर सिंह, बाघ, चीते व भालू उस योगी को वनों में विचरण करते हुए मिला करते थे, किंतु ऋषि के योगफल के प्रभाव से हिंसा वृत्ति त्यागकर उनके पास से होकर और उनको निर्भयता के साथ निहारते हुए चले जाया करते थे।

अतः यह सिद्ध है कि आर्यसमाज के प्रवर्तक आचार्य दयानंद निश्चय ही एक अद्भुत आदर्श योगी थे। कर्मयोग में निरंतर रहते हुए भी समाधि योग में ब्रह्मानंद का रसपान करते हुए उस महामानव को हम प्रायः देखते हैं जो उनकी योग सिद्धि और आस्तिक भावना का प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

आर्यसमाज की स्थापना के साथ ही स्वामी जी ने हिन्दी में ग्रन्थ रचना आरम्भ की। साथ ही पहले के संस्कृत में लिखित ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद किया। 'ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका' उनकी असाधारण योग्यता का परिचायक ग्रन्थ है। 'सत्याथप्रकाश' सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ है। अहिन्दी भाषी होते हुए भी स्वामी जी हिन्दी के प्रबल समर्थक थे। उनके शब्द थे - 'मेरी आंखें तो उस दिन को देखने के लिए तरस रहीं हैं, जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक भाषा को बोलने और समझने लग जायेंगे।' अपने विचारों के कारण स्वामी जी को प्रबल विरोध का भी सामना करना पड़ा। उन पर पत्थर मारे गए, विष देने के प्रयत्न भी हुए, डुबाने की चेष्टा की गई, पर वे पाखण्ड के विरोध और वेदों के प्रचार के अपने कार्य पर अडिग रहे।

इन्होंने शैवमत एवं वेदान्त का परित्याग किया, सांख्ययोग को अपनाया जो उनका दार्शनिक लक्ष्य था और इसी दार्शनिक माध्यम से वेद की भी व्याख्या की। जीवन के अन्तिम बीस वर्ष इन्होंने जनता को अपना संदेश

सुनाने में लगाये। दक्षिण में बम्बई से पूरा दक्षिण भारत, उत्तर में कलकत्ता से लाहौर तक इन्होंने अपनी शिक्षाएँ घूम-घूम कर दीं। पण्डितों, मौलवियों एवं पादरियों से इन्होंने शास्त्रर्थ किया, जिसमें काशी का शास्त्रार्थ महत्त्वपूर्ण था। इस बीच इन्होंने साहित्य कार्य भी किये। चार वर्ष की उपदेश यात्रा के पश्चात ये गंगातट पर स्वास्थ्य सुधारने के लिए फिर बैठ गये। ढाई वर्ष के बाद पुनरूपेण जनसेवा का कार्य आरम्भ किया।

1863 से 1875 ई. तक स्वामी जी देश का भ्रमण करके अपने विचारों का प्रचार करते रहें। उन्होंने वेदों के प्रचार का बीड़ा उठाया और इस काम को पूरा करने के लिए 10 अप्रैल 1875 ई. को आर्य समाज नामक संस्था की स्थापना की। शीघ्र ही इसकी शाखाएं देश-भर में फैल गई। देश के सांस्कृतिक और राष्ट्रीय नवजागरण में आर्य समाज की बहुत बड़ी देन रही है। हिन्दू समाज को इससे नई चेतना मिली और अनेक संस्कारगत कुरीतियों से छुटकारा मिला। स्वामी जी एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे। उन्होंने जातिवाद और बाल-विवाह का विरोध किया और नारी शिक्षा तथा विधवा विवाह को प्रोत्साहित किया। उनका कहना था कि किसी भी अहिन्दू को हिन्दू धर्म में लिया जा सकता है। इससे हिंदुओं का धर्म परिवर्तन रूक गया।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने विचारों के प्रचार के लिए हिन्दी भाषा को अपनाया। उनकी सभी रचनाएं और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश मूल रूप में हिन्दी भाषा में लिखा गया। उनका कहना था - मेरी आंख तो उस दिन को देखने के लिए तरस रही है। जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक भाषा बोलने और समझने लग जाएंगे।

स्वामी दयानंद महान अंतर्दृष्टा थे। राष्ट्र के पतन के मूल रहस्य का गंभीरतापूर्वक उन्होंने अध्ययन किया था। उन्होंने जात-पांत, छूत-छात, ऊंच-नीच के भेद-भावों को इस पतन का मूल कारण समझा था। प्रसिद्ध फ्रांसीसी साधु पाल रिचार्ड ने हिमालय में तप करते हुए ऋषि की इस दिव्य दृष्टि का अपने शब्दों से स्पष्ट अनुमोदन किया। उसने देखा 'क्योंकि एशिया की पुत्री इस महती आर्य जाति ने अपने ही भाइयों को अछूत और पड़िया बनाया है, इसलिए यह महान जाति विश्व में अछूत और पड़िया

बनी। साथ ही यह थी शिक्षा, 'इस आर्य जाति का भविष्य उज्ज्वल है। इसकी स्वाधीनता को रोके रखने की शक्ति किसी में नहीं है, जिस दिन यह अपने इन वाक्यों को काट देगी, यह निश्चय ही स्वतंत्रता-लाभ करेंगे।'

वेदों का स्वरूप एवं अर्थों का तथातथ्य ज्ञान रखने वाला मानव ही वेदवेत्ता अर्थात् वैदिक-स्कॉलर माना जा सकता है। आचार्य दयानंद इस युग के सबसे अधिक गंभीर पांडित्यपूर्ण महामानव थे। वेदों का महान गहन चिंतन उस महापुरुष ने अपने जीवन में किया था और सहस्त्राब्दियों से जितना मल वाममार्गियों, तांत्रिकों एवं पौराणिकों के द्वारा वेदों के अर्थवाद पर चढ़ाया गया था, उनका निराकरण करने का अद्भुत सामर्थ्य उस ऋषिराज दयानंद में ही था। स्वामी दयानंद से पूर्व अनेक आचार्य वेदांत, दर्शन, उपनिषदों को ही वेद मान बैठे थे। अनेक ब्राह्मण ग्रंथों एवं देवों के शाखा ग्रंथों को भी वेद मान बैठे थे। वेदत्रयी का स्थान प्रस्थानत्रयी ने ग्रहण किया था।

आज का अंग्रेजी पढ़ा-लिखा भारतीय तो इन अंग्रेजों का मानस पुत्र प्रायः बन बैठा है। आचार्य दयानंद ने विदेशियों द्वारा संस्थापित इन वेद संबंधी अनर्गल वादों का सम्यक् प्रकार से रहस्योद्घाटन अपनी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में प्रौढ़ पांण्डित्यपूर्वक सुंदरता के साथ किया है, किंतु भारतीय मस्तिष्क को अभी तक इसकी पूरी हवा नहीं लगी है। आवश्यक है कि महर्षि दयानंद के चलाए सही सिद्धांतों का अधिकाधिक प्रचार एवं प्रसार हो। स्वामी जी धार्मिक संकीर्णता और पाखंड के विरोधी थे। अतः कुछ लोग उनसे शत्रुता भी करने लगे। इन्हीं में से किसी ने 1883 ई. में दूध में कांच पीसकर पिला दिया जिससे आपका देहांत हो गया। आज भी उनके अनुयायी देश में शिक्षा आदि का महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं।

महर्षि दयानंद के अनमोल बोल

ईश्वर अमृत है और वही सबके उपासना करने योग्य है। उससे जो भिन्न है, वह सब झूठा है, वह अपना आधार (मान्य) नहीं है।

*

मधुर वचन बोलना ही अमृत है। अमृत कोई ऐसा पेय नहीं जिसे पीकर आदमी फिर अजर-अमर हो जाए।

*

हम सब अमृत पुत्र हैं अर्थात् अमर हैं। इसका अर्थ इतना ही है कि मानव की आत्मा अजर-अमर है, वह कभी नहीं मर सकती।

*

अहिंसा, इसका केवल 'पश्वादि न मारना' ऐसा संकुचित अर्थ करते हैं; परन्तु व्यासजी ने ऐसा अर्थ किया है कि सर्वदा सर्वथा सर्वभूतानामनभिद्रोहः अहिंसा ज्ञेया अर्थात् वैर त्याग करना।

*

जो अहिंसा के मार्ग पर चलता है वह पूजनीय है, लेकिन कई जगह सर्वत्र अहिंसा की नीति वर्जित है, जैसे कि युद्ध के मैदान में।

*

मनुष्य जैसे अपने लिए गुण, कर्म, स्वभाव और सुख को चाहें वैसे औरों के लिए भी चाहें, जैसे अपनी-अपनी उन्नति की चाहना करें, वैसे परमेश्वर

और विद्वानों के निकट में अन्यों की उन्नति की प्रार्थना करें, केवल प्रार्थना ही न करें, किंतु सत्यनारायण भी करें, जब-जब विद्वानों के निकट जावें तब-तब सबके कल्याण के लिए प्रश्न और उत्तर किया करें।

*

मनुष्यों को चाहिए कि वे जैसे अपने लिए सुख की चाहें वैसे औरों के लिए भी चाहें। जैसे कोई भी अपने लिए दुख नहीं चाहता वैसे औरों के लिए भी न चाहें।

*

वेदों को जानने वाले ही धर्माधर्म के जानने तथा धर्म के आचरण और अधर्म के त्याग से सुखी होने को समर्थ होते हैं।

*

कोई भी मनुष्य वेदाभ्यास के बिना संपूर्ण सांगोपांग वेद विद्याओं को प्राप्त होने योग्य नहीं होता।

*

यदि मेरी भी कोई बात तुम्हें असत्य तथा वेद-विरुद्ध प्रतीत हो तो उसे भी मत मानना, क्योंकि व्यक्ति को हमेशा सत्य को ग्रहण करने के लिए ही उद्यत रहना चाहिए।

*

असत्य के बल पर कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि असत्य से सत्य को छिपाया नहीं जा सकता।

*

जो सत्य और असत्य का भेद करना जानता है, वह अपने मार्ग से कभी नहीं भटक सकता।

*

असत्य का त्याग करने के लिए हमेशा उद्यत रहो, क्योंकि असत्य उन्नति और कल्याण का मार्ग अवरुद्ध कर देता है।

*

अस्तेय अन्याय से धनादि ग्रहण करना, (या) बिना आज्ञा पर-पदार्थ उठा लेना स्तेय है और स्तेय त्याग अस्तेय कहलाता है।

*

प्राकृत जनों में सगुण अर्थात् अवतार और निर्गुण अर्थात् परब्रह्म ऐसा अर्थ करके इस सम्बन्ध से वाद चलता है, परन्तु यह अर्थ ठीक नहीं है। ''स पर्यगात्'' इस श्रुति पर से अवतार का होना बिल्कुल ही नहीं संभव होता। ''कविः, मनीषी'' ''एकोदेवः निगुर्णश्च'' ऐसे-ऐसे श्रुति-वाक्य हैं, इनसे ईश्वर सगुण और निर्गुण दोनों है। ज्ञान, शक्ति, आनन्द इन गुणों के सहित होने से वह सगुण है, परन्तु जड़ के गुण उसमें नहीं है। इन गुणों के (अभाव) सम्बन्ध से वह निर्गुण है। प्रथम जो मैंने श्रुति कही, उसके साहचर्य के ओर ध्यान देने से यह अर्थ निकलता है।

*

तुम अवतार को मानकर सब कार्य ईश्वर पर छोड़ देते हो। कितनी बड़ी मूर्खता है। पहले पंडितों और क्षत्रियों ने भी अवतारों के भरोसे देश छोड़ दिया और यवन एवं अंग्रेज आकर हमें पराधीन कर लिए, ऐसे समय अवतार क्यों नहीं आए, जब तुम गुलाम बनाए जा रहे थे।

*

जिस पुरुष को यह अभिमान होता है कि मैं धनाढ्य हूं, या मैं बड़ा राजा हूं उसे अविद्या का दोष है। दूसरा शरीर का क्षीण रहना, यह अविद्या के कारण ही होता है। इससे सब प्रकार की विद्या सम्पादन करने के विषय में प्रयत्न करते रहना चाहिए। हमारे देश में न्यून अवस्था में विवाह करने की रीति के कारण विद्या-सम्पादन करने में अड़चन होती है। अपवित्र पदार्थ में पवित्रता मानना यह अविद्या है। ईश्वर का ध्यान, यह पूर्ण विद्या है। यह सारी विद्याओं का मूल है। किसी भी देश में इस विद्या का ह्रास (न्यूनता) होने से उस देश को दुर्दशा आ घेरते हैं।

*

हम सर्वज्ञ नहीं, और सब बातें हममें उपस्थित भी नहीं। दोष बतलाने

पर हम स्वीकार करेंगे। हमारे बोलने में अनन्त दोष होते होंगे। इस विषय में हमें अभिमान नहीं है।

*

ज्ञानी कभी भी अभिमान नहीं करते और न ही अभिमान करना किसी को शोभा देता है।

*

जो कोई अधर्म के पथ पर चलता है, उसका सर्वस्व नष्ट हो जाता है।

*

अधर्म अनेक अवगुणों का पिता है, इसलिए अधर्म का त्याग करके धर्म का आचरण करना चाहिए।

*

अपने निजी स्वार्थ के लिए जो लोग अधर्म का सहारा लेते हैं, वे कभी भी आत्म कल्याण नहीं कर सकते।

*

अग्नि परमाणु में जो गुण हैं, वे अग्नि के परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म होकर मेघ मण्डल तक विस्तीर्ण होते हैं और उससे वायु शुद्धि परिणाम होता है।

*

अग्नि का नाम अश्व भी है, विद्वानों ने इस वज्र को दिखाया। वज्र नाम है अग्नि का! जो अग्नि है इसको आगे से दिखाया गया है। इस जगह जहां कि अग्नि का भय नहीं है अर्थात् जहां कि हवा न हो, अग्नि प्रसिद्ध हुआ है। इस कारण से जहां अग्नि का मन्थन होता है अर्थात् अग्नि की अनेक प्रकार की सुन्दरता होती है वहां अग्नि बल निश्चय कहा जाता है कि सम्पूर्ण संसार इसी बल से स्थित है। यह वज्र अर्थात् अग्नि है। इस संसार को उन्नति देती है।

*

आलसी पुरुष आनन्द को कभी नहीं प्राप्त होता। जो आलस्य करता है, वह कभी तपस्वी नहीं बन सकता।

*

मित्रों को एक दूसरे के साथ अपनी आत्मा और प्राणों के समान बर्ताव करना चाहिए। अपने पड़ोसियों को अपनी देह के तुल्य जानना चाहिए। मालिक नौकर के साथ ऐसा बर्ताव करे, जैसा वह अपने अंगों के साथ करता है।

*

आत्मा अजर-अमर है, इसलिए कोई ऐसा कार्य मत करो जिससे किसी का अनिष्ट हो।

*

आर्यभाषा (हिन्दी) ही देश को एकता के सूत्र में बांध सकती है। आर्यभाषा में ही इस भारत देश का कल्याण छिपा हुआ है।

*

आसन वही है कि जिसमें सुख से बैठकर ईश्वर से योग हो सके। योग और आसनों के बल पर व्यक्ति अपने जीवन को सुखमय बना सकता है।

*

ग्रह आकाश में स्थित है और आकाश यह व्यापक है, गृह व्याप्य है। इसलिए आकाश और ग्रह ये एक ही हैं या अभिन्न हैं, ऐसा अनुमान निकालते नहीं आता। इसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा ये अभिन्न हैं, ऐसा कहने का अवकाश नहीं रहता।

*

आकाश विभु होने से सब पदार्थों का अधिकरण है और उससे भी विभु और अति सूक्ष्म परमात्मा है। आकाश को ईश्वर ने उत्पन्न किया।

*

आकाश और परमात्मा का आधाराधेय सम्बन्ध है। अव्यक्त प्रकृति की

जो अव्यक्त स्थिति (होती) है उसी को आकाश कहना चाहिए।

*

सभी गृहस्थों को आनन्द करते हुए जीवन निर्वाह करना चाहिए, यह उनका मुख्य धर्म है।

*

आनन्द की प्राप्ति परोपकार के कार्यो से ही हो सकती है, इसलिए हमेशा दूसरों की भलाई करो।

*

आदि विद्या अर्थात् सब विद्याओं का मूल तत्त्वमात्र ईश्वर द्वारा प्रकाशित हुआ। उसका विशेष प्रभाव मनुष्यों के हाथों से अभ्यास द्वारा होता है।

*

वेद ग्रंथ ही आदि विद्या है। वेदों का पढ़ना-पढ़ाना इसीलिए सब लोगों का धर्म है।

*

आश्रम चार हैं : ब्रह्मचर्य, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ और संन्यास। सुसंगति, अध्ययनादिकों का अधिकार मनुष्यमात्र को है। जिस-जिस प्रकार का जिस-जिस पर संस्कार होगा, उसी-उसी प्रकार उसकी योग्यता मनुष्यमात्र में बढ़ेगी। हमारे देश में कोई बड़ी धर्म-सभा नहीं, जिसके कारण आश्रम व्यवस्था और वर्ण-व्यवस्था कुछ की कुछ ही हो गई। भला आदमी दुःख उठाता है, जितने चाहिए उतने मजदूर नहीं मिल सकते, क्योंकि देशभर में साधुओं की टोलियां-की-टोलियां फिरती हैं।

*

आधुनिक सम्प्रदायों के अनुकूल जो साधु बने हैं, उनकी गणना किस आश्रम में की जाए? क्योंकि शास्त्र का आधार छोड़ लोग मनमाने रहने लगे हैं, यह एक प्रकार की जबरदस्ती है। शुद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण यह व्यवस्था गुण, कर्म व स्वभाव से की जा सकती है और प्राचीन आर्य लोगों की व्यवस्था इसी प्रकार थी। वे जन्म से ब्राह्मण नहीं मानते थे। व्यक्ति

कर्मों के आधार पर जाना जाता था।

*

प्राचीन आर्य लोग बड़े ही बुद्धिमान् थे, इसमें किञ्चित् भी सन्देह नहीं है।

*

प्राचीनकाल के आर्य लोग अभेद्यवीर्य थे और स्त्रियों में भी पूर्ण वय होने के कारण वीर्याकर्षता रहती थी।

*

सदियों पहले ब्रह्मचारी और ब्राह्मण इनका नाम आर्य था।

*

हमारे देश का नाम 'आर्यस्थान' 'आर्यखण्ड' होना चाहिए, सो उसे छोड़ न जाने 'हिन्दुस्तान' यह नाम किस से निकला?

*

'आर्यवर्त' देश इस भूमि का नाम इसलिये है कि इसमें आदि सृष्टि से आर्य लोग निवास करते हैं, परन्तु इनकी अवधि उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पश्चिम में अटक और पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी है। इन चारों के बीच में जितना देश है उस को 'आर्यवर्त' कहते और जो इस में सदा रहते हैं उन को भी आर्य कहते हैं।

*

यह आर्यावर्त देश ऐसा है कि भूगोल भर में इसके सदृश दूसरा देश दिखाई नहीं देता। इसी कारण भारत-भूमि का नाम स्वर्ण-भूमि है, क्योंकि यही भूमि स्वर्ण आदि रत्नों को उत्पन्न करती है। सृष्टि के आदि में, आर्य जन इसी लिए इसमें आकर बसे थे। भूगोल में जितने भी देश हैं, उनके जितने भी निवासी हैं, वे सारे इसी देश की प्रशंसा करते हैं, इसी से आशा रखते हैं। यह आर्यवर्त देश ही सच्चा पारस मणि है, जिसको लोहे के सदृश दरिद्र विदेशी छूते ही धनाढ्य हो जाते हैं।

*

'आर्यवर्त' ही आर्यो का आदि देश है, इसमें कोई संदेह नहीं।

*

इन्द्रियनिग्रह अर्थात् सारी इन्द्रियों को न्यायपूर्वक वश में रखना, इन्द्रियों का निग्रह बड़ी युक्ति से करना चाहिए। इन्द्रियों का आकर्षण परस्पर सम्बन्ध से होता है।

*

इन्द्रियां इतनी प्रबल हैं कि अपनी ही माता तथा बहिनों के साथ रहने में भी सावधान रहना चाहिए।

*

इतिहास अर्थात् ''इतिहासो नाम वृत्तम'' इतिवृत्त अर्थात् अतीत वर्णन को इतिहास कहते हैं। हमें अपने इतिहास से सबक लेना चाहिए, लेकिन दुख का विषय है कि हम इतिहास से किंचित भी शिक्षा ग्रहण नहीं करते।

*

जिस प्रकार की इच्छा जगत् में दिखाई देती है, उस प्रकार इच्छा ईश्वर में सम्भव नहीं होती।

*

प्रथम हमें ईश्वर की सिद्धि करनी चाहिए, उसके पश्चात् धर्म-प्रबन्ध का वर्णन करना योग्य है; क्योंकि वैदिक ज्ञान से जब तक ईश्वर की सिद्धि नहीं होती, जब तक धर्म-व्याख्यान करने का अवकाश नहीं है।

*

ईश्वर में जैसा अनन्त है, आनन्द उसी तरह संस्कृतभाषा में भी अनन्तानन्द है। इस भाषा के सदृश मृदु, मधुर और व्यापक, सर्व-भाषाओं की माता, ऐसी दूसरी कौन-सी भाषा है?

*

ईश्वर से कोई भी पदार्थ बड़ा नहीं है और न ईश्वर को प्रवृत्त करने वाला ही कोई पदार्थ है। इसलिए ईश्वर के काम में उपर्युक्त अर्थ वाला प्रयोजन नहीं सम्भव होता।

*

हमें सर्वव्यापक ईश्वर में आस्था रखते हुए आत्मा के विकास के लिए प्रयास करना चाहिए।

*

प्रथम 'ईश्वर' कि जिसके ब्रह्म परमात्मादि नाम हैं, जो सचिदानन्दादि लक्षण युक्त है, जिसके गुण कर्म, स्वभाव पवित्र हैं। जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्ता, हर्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त हैं, उसी को परमेश्वर मानता हूँ।

*

कोई ऐसा पूर्वपक्ष करे कि जब हम सृष्टि को अनादि नहीं मानते हैं तो अवश्य सृष्टि का कहीं-न-कहीं प्रारम्भ होना ही चाहिए और जब सृष्टि का आरम्भ हुआ, उस समय योनि-भेद था। यदि ऐसा कहा जाय तो ईश्वर अन्यायी ठहरेगा, क्योंकि कुछ आत्मा पशु आदिकों की नीच योनि में जायं और कुछ-एक मनुष्य की योनि में जाय, यह कैसे?

*

जिसमें सब देवता स्थित हैं, वह जानने एवं उपासना करने योग्य देवों का देव होने से महादेव इसलिये कहलाता है कि वही सब जगत की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकर्ता, न्यायाधीश, अधिष्ठाता ईश्वर है।

*

ईश्वर दयालु एवं न्यायकारी है। न्याय और दया में नाम मात्र ही भेद है, क्योंकि जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता है वही दया से। दण्ड देने का प्रयोजन है कि मनुष्य अपराध करने से बंध होकर दुखों को प्राप्त न हो, वही दया कहलाती है। जिसने जैसा जितना बुरा कर्म किया है उसको उतना ही दण्ड देना चाहिये, उसी का नाम न्याय है। जो अपराध का दण्ड न दिया जाय तो न्याय का नाश हो जाय। क्योंकि एक अपराधी को छोड़ देने से सहस्रों धर्मात्मा पुरुषों को दुख देना है। जब एक को

छोड़ने से सहस्रों मनुष्यों को दुख प्राप्त होता हो तो वह दया किस प्रकार हो सकती है? दया वही है कि अपराधी को कारागार में रखकर पाप करने से बचाना। निरन्तर एवं जघन्य अपराध करने पर मृत्यु दण्ड देकर अन्य सहस्रों मनुष्यों पर दया प्रकाशित करना।

*

संसार में तो सच्चा झूठा दोनों सुनने में आते हैं। किन्तु उसका विचार से निश्चय करना अपना-अपना काम है। ईश्वर की पूर्ण दया तो यह है कि जिसने जीवों के प्रयोजन सिद्ध होने के अर्थ जगत में सकल पदार्थ उत्पन्न करके दान दे रक्खे हैं। इससे भिन्न दूसरी बड़ी दया कौन-सी है? अब न्याय का फल प्रत्यक्ष दीखता है कि सुख-दुख की व्याख्या अधिक और न्यूनता से प्रकाशित कर रही है। इन दोनों का इतना ही भेद है कि जो मन में सबको सुख होने और दुख छूटने की इच्छा और क्रिया करना है वह दया और बाह्य चेष्टा अर्थात बंधन छेदनादि यथावत दण्ड देना न्याय कहलाता है। दोनों का एक प्रयोजन यह है कि सब को पाप और दुख से पृथक कर देना।

*

ईश्वर यदि साकार होता तो व्यापक नहीं हो सकता। जब व्यापक न होता तो सर्वाज्ञादि गुण भी ईश्वर में नहीं घट सकते, क्योंकि परिमित वस्तु में गुण, कर्म, स्वभाव भी परिमित रहते हैं तथा शीतोष्ण, क्षुधा, तृष्णा और रोग, दोष, छेदन, भेदन आदि से रहित नहीं हो सकता। अतः निश्चित है कि ईश्वर निराकार है। जो साकार हो तो उसके नाक, कान, आँख आदि अवयवों को बनाने वाला ईश्वर के अतिरिक्त कोई दूसरा होना चाहिये। क्योंकि जो संयोग से उत्पन्न होता हो उसको संयुक्त करने वाला निराकार चेतन अवश्य होना चाहिये।

*

कोई कहता है कि ईश्वर ने स्वेच्छा से आप-ही-आप अपना शरीर बना लिया। तो भी यही सिद्ध हुआ कि शरीर बनाने के पूर्व वह निराकार था।

इसलिये परमात्मा कभी शरीर धारण नहीं करता। किन्तु निराकार होने से सब जगत को सूक्ष्म कारणों से स्थूलाकार बना देता है।

❋

सर्वशक्तिमान का अर्थ है कि ईश्वर अपने काम अर्थात् उत्पत्ति, पालन, प्रलय आदि और सब जीवों के पाप पुण्य की यथा योग्य व्यवस्था करने में किंचित भी किसी की सहायता नहीं लेता अर्थात् अपने अनंत सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूर्ण कर लेता है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि परमेश्वर वह सब कर सकता है जो उसे नहीं करना चाहिये। जैसे अपने आपको मारना, अनेक ईश्वर बनाना, स्वयं अविद्वान, चोरी, व्यभिचारादि पाप कर्म कर और दुखी भी हो सकना। ये काम ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव से विरुद्ध हैं।

❋

ईश्वर आदि भी है और अनादि भी। ईश्वर सबकी भलाई एवं सबके लिये सुख चाहता है, परन्तु स्वतंत्रता के साथ किसी को बिना पाप किये पराधीन नहीं करता।

❋

ईश्वर की स्तुति प्रार्थना करने से लाभ है : स्तुति से ईश्वर से प्रीति, उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव को सुधारना। प्रार्थना से निर्भयता, उत्साह और सहाय का मिलना। उपासना से परब्रह्म से मेल और साक्षात्कार होना।

❋

ईश्वर के हाथ नहीं किन्तु अपने शक्ति रूपी हाथ से सबका रचन, ग्रहण करता है। पग नहीं परन्तु व्यापक होने से सबसे अधिक वेगवान है। चक्षु का गोलक नहीं परन्तु सबको यथावत देखता है। श्रोत नहीं तथाकथित सबकी बातें सुनता है। अंतःकरण नहीं परन्तु सब जगत को जानता है और उसको अवधि सहित जानने वाला कोई भी नहीं। उसको सनातन, सबसे श्रेष्ठ, सबमें पूर्ण होने से पुरुष कहते हैं। वह इन्द्रियों और अंतःकरण

के बिना अपने सब काम अपने सामर्थ्य से करता है।

❋

न कोई ईश्वर के तुल्य है और न उससे अधिक। उसमें सर्वोत्तम शक्ति अर्थात जिसमें अनंत ज्ञान, अनंत बल और अनंत क्रिया है। यदि परमेश्वर निष्क्रिय होता तो जगत की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय न कर सकता। इसलिये वह विभू तथापि चेतन होने से उस क्रिया में भी है।

❋

ईश्वर जितने देश काल में क्रिया करना उचित समझता है, उतने ही देशकाल में क्रिया करता है। न अधिक न न्यून क्योंकि वह विद्वान है। परमात्मा पूर्ण ज्ञानी है, पूर्ण ज्ञान उसे कहते हैं जो पदार्थ जिस प्रकार का हो उसे उसी रूप में जानना।

❋

ईश्वर अनंत है। तो उसको अनंत ही जानना ज्ञान, उसके विरुद्ध अज्ञान अर्थात् अनंत को शांत और शांत को अनंत जानना भ्रम कहलाता है। यथार्थ दर्शन ज्ञानमिति, जिसका जैसा गुण, कर्म, स्वभाव हो उस पदार्थ को वैसा जानकर मानना ही ज्ञान और विज्ञान कहलाता है और उससे उल्टा अज्ञान।

❋

''ओम्'' ईश्वर का सर्वोत्कृष्ट नाम है, क्योंकि इसमें उसके सब गुणों का समावेश होता है।

❋

जो ओम् का स्मरण करता है, उसे अच्छे कार्य करने की प्रेरणा मिलती है।

❋

मनुष्य का यह परम कर्तव्य है कि वह वाणी और लेखनी द्वारा सत्य का प्रकाश और असत्य का नाश करे। ऐसा न करने से मनुष्यों की उन्नति नहीं हो सकती।

*

अपने कर्तव्य का पालन करने में मनुष्य को गर्व का अनुभव होना चाहिए।

*

सब द्रव्यों में स्वाभाविक और संयोगजन्य दो प्रकार के गुण हैं। उनमें स्वाभाविक गुणों का नाश कभी नहीं होता, संयोग जन्म गुणों का वियोग से ह्रास (घटती) होता है। यदि स्वाभाविक गुण पदार्थों में न माने जायं तो समुदाय में गुण कहां से आवेगा?

*

वायु और जल की दुर्गन्ध नष्ट होकर उनमें शुद्धि और पुष्टि वर्धनादि गुण बढ़ने से सब चराचरों को सुख होता है।

*

माता-पिता और जो सत्य का ग्रहण करावे और असत्य को छुड़ावे वह भी 'गुरु' कहलाता है।

*

गुरु के बिना ज्ञान नहीं मिलता, लेकिन शिष्य को गुरु की परीक्षा लेकर उसका चयन करने का भी अधिकार है।

*

हमें स्पष्ट विदित है कि जड़ मूर्तियों के सम्मुख मन्दिरों में जैसे-जैसे दुराचरण होते हैं वैसे दुराचरण 5 वर्ष के बच्चे के सम्मुख भी करने की मनुष्य की हिम्मत नहीं होती। पर इससे स्पष्ट है मनुष्य से मनुष्य जितना डरता है, उतना जड़ मूर्तियों से नहीं डरता। किन्तु यह तो होता है कि लाख मूर्तियों में भी यदि मनुष्य खड़ा किया जावे, उसका चित्त भ्रष्ट और चंचल होवे तो वह दुराचरण की प्रवृत्ति दिखाता है

*

जड़ मूर्तियां पूजा योग्य नहीं, माता-पिता की पूजा करो।

*

जल परमाणु में शीतलता है। इसलिए परमाणु समुदाय रूप जल का

शीतलता स्वाभाविक धर्म है।

*

जीव और ब्रह्म को यदि एक कहें तो जीव में ब्रह्म के गुण नहीं हैं, जीव को अपरिमित ज्ञान और सामर्थ्य नहीं। यदि हम ब्रह्म बन जावें तो हम जगत् भी रच लेवें। इससे पुनः एक बार ऐसा कहना आवश्यक हुआ कि विश्व जड़, ब्रह्म चेतन है और इनका आधाराधेय, सेव्य-सेवक, व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है।

*

जीव ब्रह्म नहीं, जगत् ब्रह्म नहीं। इस स्थल पर कार्य-कारण भिन्न-भिन्न हैं। यही प्रकार सत्य है, परन्तु अखिल सजीव और निर्जीव पदार्थ ईश्वर ने अपने सामर्थ्य से निर्माण किए। वह सामर्थ्य उसी के पास सदा रहता है, इस तात्पर्य से भेद नहीं आता।

*

'जीव-भावना' भ्रान्ति का परिणाम है। भ्रान्ति दूर होने से जीव ब्रह्म होता है, ऐसी समझ है तो (यह समझ) ठीक नहीं, क्योंकि भ्रान्ति परमात्मा में संभव नहीं।

*

दूसरों का परोपकार करना ही जीव-भावना होनी चाहिए।

*

एक जन्मवादियों के और अनेक जन्मवादियों के कथन में बहुत-सी युक्ति-प्रयुक्तियों का आधार है। अब उन युक्ति-प्रयुक्तियों का विचार करें। गतानुगति को लोकः इस न्याय से परम्परागत ज्ञात का स्वीकार करना यह विद्वानों को उचित नहीं; तर्क-वितर्क करके निर्णय करना, यह विद्वानों का मुख्य कर्त्तव्य है।

*

ब्रह्मा की उत्पत्ति तक दिव्य सृष्टि थी, पश्चात् मैथुनी सृष्टि उत्पन्न हुई, उससे विराट् हुआ, और विराट् के पीछे मनु हुआ। मनु ने धर्म-व्यवस्था

बनाई। मनु के दस पुत्र थे, उनमें स्वायम्भुव (मरीचि) के समय में राजकीय और सामाजिक व्यवस्थाएं प्रारम्भ हुईं।

*

दयानन्द की आँखें वह दिन देखना चाहती हैं जब काश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक देवनागरी अक्षरों का ही प्रचार होगा। मैंने भारत भर में एक भाषा का प्रचार करने के लिए ही अपने सारे ग्रन्थ आर्य-भाषा में बनाये हैं।

*

ब्राह्मणादिकों का याजन अध्यानादि मुख्य धर्म है, उसी तरह राजधर्म युद्ध धर्म ये क्षत्रियों के मुख्य धर्म हैं।

*

धर्म और अधर्म ये अनेक हैं, परन्तु उनमें से विशेष रीति से ग्यारह धर्म और ग्यारह अधर्म हैं।

*

हे भारत की पवित्र भूमि, तू धन्य है, जिसमें प्रभु ने अपने ज्ञान का प्रकाश किया।

❑❑❑